मूल्य : ₹ 30 जुलाई 2025 आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

• इस अंक में •

पुराने तालाबों का रखरखाव

ग्रीष्मकालीन मानसून में मौसमी बदलाव

बहुवर्षीय नेपियर घास का सफल उत्पादन

सिंचाई जल का परीक्षण एवं प्रबंधन

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गौरवशाली संकल्प

भारतीय कृषि को वैज्ञानिक आधार देने एवं इसे आधुनिक बनाने में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भाकृअनुप) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी 16 जुलाई 2025 को भाकृअनुप का 97वां 'स्थापना एवं प्रौद्योगिकी दिवस' मनाया जायेगा, जो हमें इसके गौरवशाली इतिहास, उपलब्धियों और भविष्य की संभावनाओं की याद दिलाता है।

स्थापना और उद्देश्य

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की स्थापना 16 जुलाई वर्ष 1929 में 'इंपीरियल काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च' के रूप में हुई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इसे 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद' नाम दिया गया। परिषद का मुख्य उद्देश्य कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन और संबद्ध क्षेत्रों में अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार कार्य को बढ़ावा देना है।

भाकृअनुप की प्रमुख उपलब्धियां

- **हरित क्रांति में योगदानः** 1960 और 1970 के दशक में भारत खाद्यान्न की भारी कमी से जूझ रहा था। उस समय भाकृअनुप द्वारा विकसित उच्च उत्पादन क्षमता वाली गेहूं और धान की किस्मों ने हरित क्रांति को संभव बनाया। इससे भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना।
- **कृषि अनुसंधान संस्थानों की स्थापनाः** भाकृअनुप के अंतर्गत देश भर में 113 से अधिक संस्थान, 75 कृषि विश्वविद्यालय और 731 कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) संचालित होते हैं। ये संस्थान किसानों को उन्नत तकनीकों से जोड़ते हैं और उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करते हैं।

तकनीकी नवाचार और डिजिटलीकरण

आज के डिजिटल युग में भाकृअनुप ने भी तकनीकी नवाचारों को अपनाया है। 'फार्मर पोर्टल', 'किसान मोबाइल ऐप', 'ई-नाम' और 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' जैसे नवाचार भाकृअनुप के नेतृत्व में कृषि क्षेत्र में लागू हो रहे हैं। इससे न केवल कृषि अधिक वैज्ञानिक बन रही है, बल्कि किसानों की आय भी निरंतर बढ़ रही है।

नवाचार से आत्मनिर्भर कृषि की ओर

- **नई किस्मों और तकनीकों का विकासः** भाकृअनुप द्वारा समय-समय पर विभिन्न फसलों की सैकड़ों उन्नत किस्में विकसित की गई हैं। इसके अतिरिक्त, जैविक खेती, संरक्षण कृषि और जलवायु अनुकूल कृषि तकनीकों पर भी कार्य किया जा रहा है।
- **पशुपालन और मत्स्यपालन में योगदानः** भाकृअनुप ने दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन, पशु प्रजनन और मछली पालन के क्षेत्रों में अनुसंधान को बढ़ावा देकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त किया है।
- **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा में भूमिकाः** देश की बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए भाकृअनुप ने स्थायी कृषि प्रणाली पर बल दिया है, जिससे उत्पादन तो बढ़े ही एवं पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

कृषि शिक्षा में योगदान

परिषद की देश की कृषि शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका है। देशभर में स्थित कृषि विश्वविद्यालयों में कृषि, बागवानी, वानिकी, डेरी विज्ञान, पशु चिकित्सा, मत्स्यपालन और खाद्य प्रौद्योगिकी जैसे विविध विषयों में स्नातक से लेकर पीएचडी तक की शिक्षा दी जाती है। इसके साथ ही 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' को लागू कर शिक्षा की गुणवत्ता को सुनिश्चित किया गया है।

कृषि विस्तार सेवाएं

भाकृअनुप का एक मुख्य स्तंभ कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) हैं, जो किसानों तक तकनीक पहुंचाने का कार्य करते हैं। ये केंद्र स्थानीय कृषि समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं तथा किसानों को प्रशिक्षण, प्रदर्शन, और कार्यशालाओं के माध्यम से नवीनतम तकनीकों से अवगत करवाते हैं।

जलवायु परिवर्तन और कृषि

जलवायु संकट आज विश्व की सबसे कड़ी चुनौतियों में से एक है। इससे कृषि उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वहीं देशभर में जलवायु के प्रभाव से बचने के लिए 'राष्ट्रीय नवाचार कृषि कार्यक्रम' (निक्रा) जैसे प्रोजेक्ट आरंभ किए गए हैं। ये जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने हेतु अनुसंधान और तकनीकी समाधान प्रदान करते हैं। सूखा, बाढ़, लवणता जैसी समस्याओं के लिए सहनशील किस्मों का विकास इसका उदाहरण है।

भावी परिदृश्य

भविष्य में भारत की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि क्षेत्र को और अधिक वैज्ञानिक, लाभकारी और टिकाऊ बनाने की आवश्यकता है। भाकृअनुप इस दिशा में निरंतर कार्य कर रही है। जैव प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन टेक्नोलॉजी और स्मार्ट खेती जैसे क्षेत्रों में भाकृअनुप की पहलें आने वाले समय में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने कृषि को केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और लाभकारी व्यवसाय के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ■

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 78, अंक: 3, जुलाई 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 300.00
विशेषांक : रु. 100.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

इस अंक में

निदेशक की कलम से — **विकसित कृषि संकल्प अभियान, अनुराधा अग्रवाल**

4 जलाशय
पुराने तालाबों का रखरखाव
अजय कुमार, अनुराधा, निर्देश, रोहित कुमार **और** नितेश कुमार यादव

13 प्रणाली
एकीकृत जलीय कृषि से सतत आजीविका
गुलगुल सिंह **और** बलबीर सिंह खद्दा

6 जलवायु
ग्रीष्मकालीन मानसून में मौसमी बदलाव
अंकित यादव, योगेश कुमार **और** वेद प्रकाश

16 जलशक्ति
सिंचाई जल का परीक्षण एवं प्रबंधन
किरण कुमारी, अंकुश कम्बोज, विकास **और** सुशील

10 हरा चारा
बहुवर्षीय नेपियर घास का सफल उत्पादन
चंदन कुमार, अरविन्द सिंह तेतरवाल **और** झब्बरमल तेतरवाल

18 अभियांत्रिकी
पुनर्योजी कृषि के लिए मशीनीकरण
राहुल गौतम, चेतन सावंत, विजय कुमार, अभिजीत खड़तकर **और** अजित मगर

विषय-सूची

विषय-सूची

21 महत्व

सतत कृषि हेतु प्राकृतिक खेती

सरोज चौधरी, प्रीती वर्मा, नरेश कुमार अग्रवाल, बंशीधर **और** धीरज कुमार

25 अद्यतन

कृत्रिम बुद्धिमत्ता से कृषि में क्रांतिकारी परिवर्तन

शिंदे धीरज

28 मात्स्यिकी

रेनबो ट्राउट में प्रमुख रोगों का निदान

सुरेश चन्द्रा, रेनू जेठी, राजा आदिल हुसैन भट्ट, सुमंत कुमार मलिक **और** परवेज अहमद गनी

97वां स्थापना दिवस

आवरण II

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गौरवशाली संकल्प

31 संरक्षण

बीज की आयु का माइटोकॉन्ड्रियल आधार

रविश चौधरी, धर्मपाल सिंह, डी. विजय, मंजूनाथ प्रसाद सी.टी. **और** ज्ञान प्रकाश मिश्रा

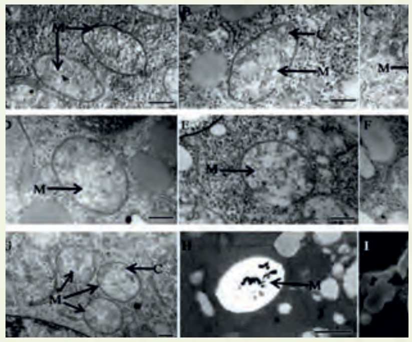

34 कृषि कैलेण्डर

जुलाई के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, अंजली पटेल, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस.एस. राठौर **और** ऋषभ सिंह चंदेल

सामयिक

आवरण III

कृषि खबरें, देश-विदेश की

निदेशक की कलम से

विकसित कृषि संकल्प अभियान

विकसित कृषि संकल्प अभियान भारत सरकार की एक दूरदर्शी पहल है। इसका उद्देश्य भारतीय कृषि को आधुनिक, टिकाऊ और समावेशी बनाना है। यह एक राष्ट्रव्यापी अभियान है, जिसे वैज्ञानिक पहुंच, टिकाऊ प्रथाओं और किसान सशक्तिकरण के माध्यम से भारतीय कृषि को आधुनिक बनाने के लिए शुरू किया गया। इसका आयोजन 29 मई से 12 जून 2025 तक किया गया। इसका उद्देश्य 'अनुसंधान किसान के द्वार तथा प्रयोगशाला में विकसित तकनीक को खेतों तक' पहुंचाना है। इस मुहिम के अंतर्गत देश के 723 जिलों के 1,40,365 गांव में 2170 वैज्ञानिकों की टीम एवं अन्य अधिकारियों ने 1,35,39,979 किसानों से सीधा संवाद स्थापित किया, जिसमें वैज्ञानिक कृषि तकनीकों को अपनाने और टिकाऊ कृषि विकास को बढ़ावा देने की चर्चा हुई। इस अभियान के माध्यम से टीम ने 60848 दौरे देश के तकरीबन हर राज्य में किए गए।

यह अभियान छोटे और सीमांत किसानों को सशक्त बनाने का संकल्प है। इसके तहत किसानों को बेहतर बीज, सिंचाई सुविधाएं, उन्नत तकनीक, ऋण और फसल बीमा जैसी सुविधाएं प्रदान कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने पर बल दिया गया है। यह प्राकृतिक, जैविक और जल संवेदनशील कृषि को बढ़ावा देने की दिशा में एक ठोस कदम है। इससे पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ लंबी अवधि में कृषि की स्थिरता सुनिश्चित की जा सकती है। किसानों की आय में वृद्धि के उपाय सुझाना, युवाओं को कृषि नवाचार से जोड़ना और नीति एवं योजनाओं के क्रियान्वयन में जमीनी भागीदारी सुनिश्चित करना इस अभियान के प्रमुख उद्देश्य रहे।

कृषकों को आधुनिक कृषि से जोड़ना यानि वैज्ञानिक खेती, ड्रोन, सटीक कृषि और तकनीकी नवाचारों का प्रसार करना आवश्यक है। रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम कर पर्यावरण अनुकूल खेती को प्रोत्साहित करना, कृषि उत्पादन की गुणवत्ता बढ़ाकर, बाजार तक पहुंच द्वारा आय को दोगुना करने की दिशा में काम करना, युवाओं को कृषि में नवाचार और उद्यमिता से जोड़ने के लिए एग्री स्टार्टअप्स, कृषि आधारित उद्योग एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम, नीतियों तथा योजनाओं की जानकारी को किसानों तक पहुंचाना, स्थानीय स्तर पर कृषि विज्ञान केंद्रों की भागीदारी सुनिश्चित करना और जलवायु अनुकूल खेती को प्रोत्साहित करना इसके मुख्य लक्ष्य हैं।

यह अभियान भारत के कृषि तंत्र को आधुनिक, टिकाऊ और लाभकारी बनाने की दिशा में एक निर्णायक कदम है। यह केवल खेती की ही नहीं बल्कि किसानों के जीवन स्तर को भी ऊंचा उठाने की एक सशक्त कोशिश है। इसका लक्ष्य विज्ञान आधारित, जलवायु अनुकूल और किसान केंद्रित कृषि के माध्यम से भारत को 'विश्व की खाद्य टोकरी' बनाने के दृष्टिकोण के अनुरूप है।

(अनुराधा अग्रवाल)

पुराने तालाबों का रखरखाव

अजय कुमार[1], **अनुराधा**[1], **निर्देश**[1], **रोहित कुमार**[2] और **नितेश कुमार यादव**[1]

"भारत में तालाबों की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है। ये तालाब न केवल जल संग्रहण के साधन रहे हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का भी अभिन्न हिस्सा रहे हैं। आज जब जल संकट दिन-प्रतिदिन गहराता जा रहा है, तब इन पुराने तालाबों का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में तालाबों की भूमिका सदियों से महत्वपूर्ण रही है। विशेषकर पुराने तालाब कभी वर्षा जल संग्रहण, सिंचाई, और सामाजिक आयोजनों के केंद्र हुआ करते थे। आज वे मछलीपालन जैसी आजीविका के लिए उपयोगी साधन बन सकते हैं।"

मछलीपालन एक कम लागत वाला, लेकिन लाभकारी व्यवसाय है, जिसे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार और पोषण दोनों ही दृष्टिकोण से अपनाया जा रहा है। किंतु इसके लिए यह आवश्यक है कि पुराने तालाबों का सही रखरखाव, जैसे-सफाई, जलस्तर नियंत्रण, जल की गुणवत्ता बनाए रखना और किनारों की मरम्मत आदि समय-समय पर की जाए। यदि पुराने तालाबों को सही ढंग से पुनर्जीवित किया जाए, तो वे मछलीपालन के लिए न केवल उपयुक्त जलाशय बन सकते हैं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती प्रदान कर सकते हैं।

तालाब तैयार करने की प्रक्रिया

सर्वेक्षण और मूल्यांकन

पुराने तालाब की गहराई, आकार, जलस्तर, पानी की गुणवत्ता और मौजूदा स्थिति का सर्वे किया जाता है। इससे यह तय किया जा सकेगा कि मछलीपालन के लिए वह उपयुक्त है या नहीं।

सफाई और गाद हटाना

तालाब की सतह से गाद, अपशिष्ट, जलकुंभी, झाड़ियां और अन्य अवांछनीय तत्व हटाए जाते हैं। इससे तालाब की जलधारण क्षमता बढ़ती है और ऑक्सीजन की उपलब्धता सुधरती है।

जलकुंभी तथा जलीय खरपतवार को हटाना

जलकुंभी को श्रमिकों के माध्यम से हटा सकते हैं। इससे तालाब की ऊपरी सतह पर पर्याप्त मात्रा में सूर्य की किरणें पड़ सकें और तालाब में ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा बनी रहे। जलीय खरपतवार जैसे-लेमना, पिस्टिया, टाइफा आदि का प्रबंधन नियमित करते रहना

उद्देश्य

- पुराने तालाबों का संरक्षण करना ताकि उन्हें मछलीपालन के लिए उपयोगी बनाया जा सके।
- तालाबों की स्वच्छता, गहराई और जल गुणवत्ता को बनाए रखना, जिससे मछलियों के लिए अनुकूल वातावरण सुनिश्चित किया जा सके।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उत्पन्न करना और स्थानीय लोगों को मछलीपालन के लिए प्रोत्साहित करना।
- प्राकृतिक जल स्रोतों का सतत उपयोग करके जल संसाधनों का संरक्षण करना।
- सामाजिक और आर्थिक रूप से टिकाऊ मछलीपालन प्रणाली को विकसित करना ताकि यह लंबे समय तक लाभकारी बना रहे।
- सरकारी योजनाओं और समुदाय की भागीदारी को बढ़ावा देना ताकि तालाबों का पुनरुद्धार सामूहिक प्रयास बन सके।

तालाब में जलकुंभी

[1]मात्स्यिकी महाविद्यालय, केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय (इंफाल) वेस्ट त्रिपुरा; [2]भाकृअनुप-केंद्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान, पंच मार्ग, ऑफ यारी रोड, मुंबई-400061 (महाराष्ट्र)

सारणीः मछलीपालन के लिए उपयुक्त तालाब जल का मापदंड

क्र.सं.	मापदंड	स्तर
1	पी-एच	7.5 से 8.5
2	तापमान	24 से 30 डिग्री सेल्सियस
3	ऑक्सीजन	5 मि.ग्रा. प्रति लीटर
4	पानी की कठोरता (हार्डनेस) स्तर	50 से 300 पीपीएम

चाहिए। इनकी अधिकता से ऑक्सीजन की मात्रा में अधिक उतार-चढ़ाव होता है, जब ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आती है, तब मछलियां मरने लगती हैं और मत्स्य पालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

जलीय कीट नियंत्रण

पुराने तालाबों में अक्सर कुछ नुकसानदायक कीट (वॉटर बॉटमैन, रानाट्रा, वॉटर स्कॉर्पियन आदि) पनप जाते हैं, जो मछलियों की त्वचा पर चिपककर अपने चूसक से हानि पहुंचाते हैं। इनसे मछलियों को बचाने के लिए ऑयलशॉप इमल्शन को 56:18 के अनुपात में घोल बनाकर जल की सतह पर फैला देना चाहिए। इसके द्वारा जलीय कीटों से निजात पाया जा सकता है।

शिकारी तथा अवांछनीय मछलियों का प्रबंधन

शिकारी मछलियां अन्य छोटी मछलियों को खाती हैं, जिससे उत्पादन प्रभावित होता है। कुछ मछलियां अधिक खाती हैं, परन्तु उनका विकास बहुत धीमा होता है, ऐसी मछलियों को तालाब से हटा देना चाहिए। इन मछलियों को हटाने अथवा मारने के लिए महुआ की खली 2500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर प्रति मीटर की दर से प्रयोग करनी चाहिए।

किनारों का रखरखाव

तालाब के किनारों को मजबूत किया जाता है, ताकि मृदा का कटाव न हो और पानी रिसे नहीं। जहां जरूरत हो, वहां पत्थर

लेमना

या घास का उपयोग किया जा सकता है। तालाब के बांधों पर हरी सब्जियां (लौकी,कद्दू, तोरई आदि) तथा कुछ छायादार पेड़-पौधों (केला, शहतूत, पपीता आदि) को लगाना चाहिए। पेड़-पौधों की जड़ें मृदा को बांधे रखती हैं, जिससे बांधों का कटाव कम होता है। समय-समय पर बांध की मरम्मत करते रहना चाहिए। बांध ढालयुक्त होने चाहिए, जिससे कटाव कम से कम हो।

जल परीक्षणः पानी का स्तर, ऑक्सीजन, नाइट्रेट, अमोनिया आदि की जांच की जाती है, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि वह मछलियों के लिए सुरक्षित है।

चूने का छिड़कावः जल की गुणवत्ता सुधारने और रोगाणुओं को नष्ट करने के लिए तालाब में चूने का छिड़काव किया जाता है। इसकी मात्रा माटी और पानी की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। चूना सामान्यतः 250 से 300 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर प्रयोग किया जाना चाहिए।

खाद तथा उर्वरकों का उपयोगः मछलियों के लिए प्राकृतिक आहार (प्लवक आदि) की वृद्धि हेतु जैविक या रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग किया जाता है। गोबर की खाद सामान्यतः 1000 से 1500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर प्रतिवर्ष 5 से 6 किश्तों में डालनी चाहिए। तालाब की उत्पादन क्षमता को जांच कर खाद तथा उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए।

शिशुमीनों का संचयनः चयनित मछलियों के शिशुओं (बीजों) को तालाब में उचित घनत्व के अनुसार डाला जाता है, जिससे वे सही तरीके से बढ़ सकें।

उपयुक्त मछलियों का चयन

पुराने तालाबों में मछलीपालन करते समय, जलवायु, जल की गुणवत्ता, तालाब की गहराई, जल स्रोत की स्थिरता तथा बाजार की मांग को ध्यान में रखते हुए मछलियों की उपयुक्त प्रजातियों का चयन करना बहुत जरूरी होता है। सही प्रजातियों के चयन से उत्पादन और लाभ दोनों बढ़ते हैं। स्थानीय जलवायु और बाजार मांग को देखते हुए रोहू, कतला, मृगल, तिलापिया, या सिंघी जैसी उपयुक्त प्रजातियां चयनित की जाती हैं। रोहू, कतला, मृगल जैसी प्रजातियों को एक साथ पालना एक प्रचलित तरीका है। ये तीनों तालाब के अलग-अलग स्तरों (ऊपरी, मध्य, और निचले) में आहार करती हैं, जिससे तालाब की पूरी क्षमता का उपयोग होता है।

पुराने तालाब केवल जल संचयन के साधन नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक और प्राकृतिक विरासत भी हैं। यदि इनका सही रखरखाव किया जाए और मछलीपालन जैसी गतिविधियों के लिए उपयोग में लाया जाए, तो ये रोजगार, पोषण और पर्यावरण संरक्षण तीनों के लिए एक मजबूत आधार बन सकते हैं। हालांकि इसके साथ कुछ चुनौतियां भी जुड़ी हैं, लेकिन सही तकनीक, प्रशिक्षण और सामुदायिक भागीदारी के जरिए इनका समाधान संभव है। यह न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त करेगा, बल्कि हमारे जल संसाधनों के टिकाऊ उपयोग को भी सुनिश्चित करेगा। अतः आवश्यक है कि अपने पुराने तालाबों को व्यावसायिक और पारिस्थितिक दृष्टिकोण से पुनर्जीवित करें ताकि 'जल है, तो कल है' की भावना को साकार किया जा सके। ■

हाथी घास

लाभ

- **आर्थिक लाभः** मछलीपालन से ग्रामीण क्षेत्रों में कम लागत में अच्छा मुनाफा कमाया जा सकता है।
- **रोजगार सृजनः** यह ग्रामीण युवाओं और किसानों के लिए एक स्थायी आजीविका का साधन बन सकता है।
- **जल स्रोत का संरक्षणः** तालाबों का पुनरुद्धार जल संरक्षण और भूजल स्तर बनाए रखने में सहायक होता है।
- **पोषण का स्रोतः** मछलियां प्रोटीन से भरपूर होती हैं, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में कुपोषण की समस्या घट सकती है।
- **पर्यावरण संतुलनः** स्वच्छ और जैविक तरीके से पालन करने पर पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- **सामुदायिक भागीदारीः** तालाबों का सामूहिक उपयोग लोगों को जोड़ता है और सामाजिक एकता को बढ़ाता है।

ग्रीष्मकालीन मानसून में मौसमी बदलाव

अंकित यादव[1], **योगेश कुमार**[2] और **वेद प्रकाश**[3]

"भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून कृषि की जीवन रेखा है। देश की वार्षिक वर्षा का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा इसी मानसून पर निर्भर है और लाखों किसानों की आजीविका का प्रमुख आधार है। हालांकि मानसून अधिक अनुमानित होता है। इसके समय और तीव्रता से मौसम में बदलाव होते रहते हैं। ये बदलाव-जैसे देर से आना, लंबे समय तक सूखा, भारी बारिश या देरी से वापसी-धान, कपास और मक्का जैसी फसलों को महत्वपूर्ण चरणों में गंभीर रूप से प्रभावित कर सकते हैं। इससे कम पैदावार, कीटों का प्रकोप और कभी-कभी पूरी फसल प्रभावित हो जाती है। इन स्वरूप को समझना, जिन्हें उप-मौसमी बदलाव कहा जाता है, किसानों को बेहतर तैयारी करने में मदद कर सकता है। उदाहरण के लिए, सूखे की स्थिति से मल्चिंग और जीवन रक्षक सिंचाई से निपटा जा सकता है, जबकि जल्दी कटाई से फसलों को भारी बारिश से बचाया जा सकता है। मौसम पूर्वानुमान और कृषि-परामर्श सेवाएं समय पर प्रबंधन करने का मार्गदर्शन कर सकती हैं, जैसे बुआई की तारीखों को समायोजित करना या सही समय पर उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग करना आदि। इन रणनीतियों का उपयोग करके, किसान जोखिम कम कर सकते हैं और मानसून के मौसम का अधिकतम लाभ उठा सकते हैं। यह लेख किसानों को इन चुनौतियों से निपटने और मानसून के उतार-चढ़ाव के बावजूद बेहतर फसल प्राप्त करने में मदद करने के लिए व्यावहारिक सुझाव और अंतदृष्टि साझा करता है।"

ग्रीष्मकालीन मानसून भारत की कुल वर्षा का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा है। यह अधिकांश फसलों के लिए पानी का प्रमुख स्रोत है। देश के शुद्ध बोए गए क्षेत्र का लगभग 51 प्रतिशत हिस्सा वर्षा पर निर्भर है और अधिकांश सिंचित क्षेत्र भी मानसून की अनियमितताओं से लाभान्वित या ग्रसित हैं।

भारत में मानसून अधिक अनिश्चित होता जा रहा है। यहां तक कि आसपास की तहसीलों में भी वर्षा के अलग-अलग रुझान देखने को मिल रहे हैं-जिससे स्थानीय स्तर पर तैयारियां प्रभावित हो रही हैं। उदाहरण के लिए, राजस्थान, गुजरात और मध्य महाराष्ट्र जैसे ऐतिहासिक रूप से शुष्क राज्यों की कई तहसीलों में पिछले दस वर्षों (वर्ष 2012-22)

[1]जलवायु परिवर्तन एवं कृषि मौसम विज्ञान विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना-141004 (पंजाब); [2]चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, बावल-123501 (हरियाणा); [3]भाकृअनुप का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

में पिछले तीन दशकों (वर्ष 1982-2011) की तुलना में 10-30 प्रतिशत अधिक दक्षिण-पश्चिम-मानसून की बारिश हुई।

पिछले दो दशकों में, सरकार ने मौसम-पूर्वानुमान प्रणालियों में निवेश किया है और राष्ट्रीय और राज्य-स्तरीय जलवायु-प्रबंधन योजनाएं विकसित की हैं। लेकिन जैसे-जैसे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव बिगड़ते जा रहे हैं और अधिक कार्रवाई की आवश्यकता है।

अक्सर यह मानसून के एक ही मौसम में होने वाले बदलाव होते हैं, जो मौसम दर मौसम मानसून की परिवर्तनशीलता से कहीं अधिक फसलों को प्रभावित करते हैं। मानसून के बदलाव न केवल धान जैसी पानी की अधिक आवश्यकता वाली फसलों को प्रभावित करते हैं, बल्कि कपास जैसी फसलों को भी प्रभावित करते हैं। धान की वनस्पति अवस्था जैसे फसल वृद्धि के एक महत्वपूर्ण चरण के दौरान वर्षा की कमी या मक्का के टैसलिंग चरण जैसे अन्य चरण के दौरान बेमौसम बारिश फसलों के लिए बहुत हानिकारक हो सकती है।

भारी वर्षा से फसल का गिरना

ग्रीष्मकालीन मानसून के उप-मौसमी बदलाव

ग्रीष्मकालीन मानसून की वर्षा (जून से सितंबर) को आमतौर पर भारत और तिब्बत पर गर्म, शुष्क और कम दबाव वाले क्षेत्र के निर्माण के कारण भारतीय महासागर से भारतीय उपमहाद्वीप के भूभाग तक नम हवाओं के बड़े पैमाने पर आंदोलन का परिणाम माना जाता है। ये नम हवाएं भारत और उसके पड़ोसी देशों तक ही सीमित हैं। हिमालय उनके आगे के आंदोलन में बाधा के रूप में कार्य करता है। यह हवा का पैटर्न फिर शरद ऋतु/सर्दियों के दौरान या भारत में मानसून के बाद के मौसम के रूप में जाना जाता है, उलट जाता है और देश के दक्षिण-पूर्वी हिस्सों में शीतकालीन मानसून के रूप में वर्षा लाता है। हालांकि, भारत के अधिकांश हिस्से पर स्थित मैदानी और पठारी क्षेत्रों में वास्तविक

सिफारिशें

भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून के उप-मौसमी बदलाव पूरे भारत में सिंचित फसलों की तुलना में वर्षा आधारित फसलों की उपज कम होने का प्राथमिक कारण हैं। इस प्रकार किसान और स्थानीय निर्णयकर्ताओं के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे मौसम के दौरान अगली बार बारिश के समय, अवधि और तीव्रता को ध्यान में रखें। किसानों को सबसे पहले बारिश में परिवर्तनशीलता के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए मौसम के पूर्वानुमान को ध्यान में रखना चाहिए और उसके अनुसार योजना बनानी चाहिए। इसके बाद, फसलों को पानी की कमी से बचाने के लिए विभिन्न उपायों को करना चाहिए जैसे-मल्चिंग, एंटी-ट्रांसपिरेंट और यदि उपलब्ध हो तो जीवन रक्षक सिंचाई। अंत में, किसानों को सलाह दी जाती है कि वे मानसून के उप-मौसमी बदलाव के प्रभाव को कम करने के लिए किसी विशेष स्थान के लिए अनुशंसित वर्षा आधारित किस्में उगाएं।

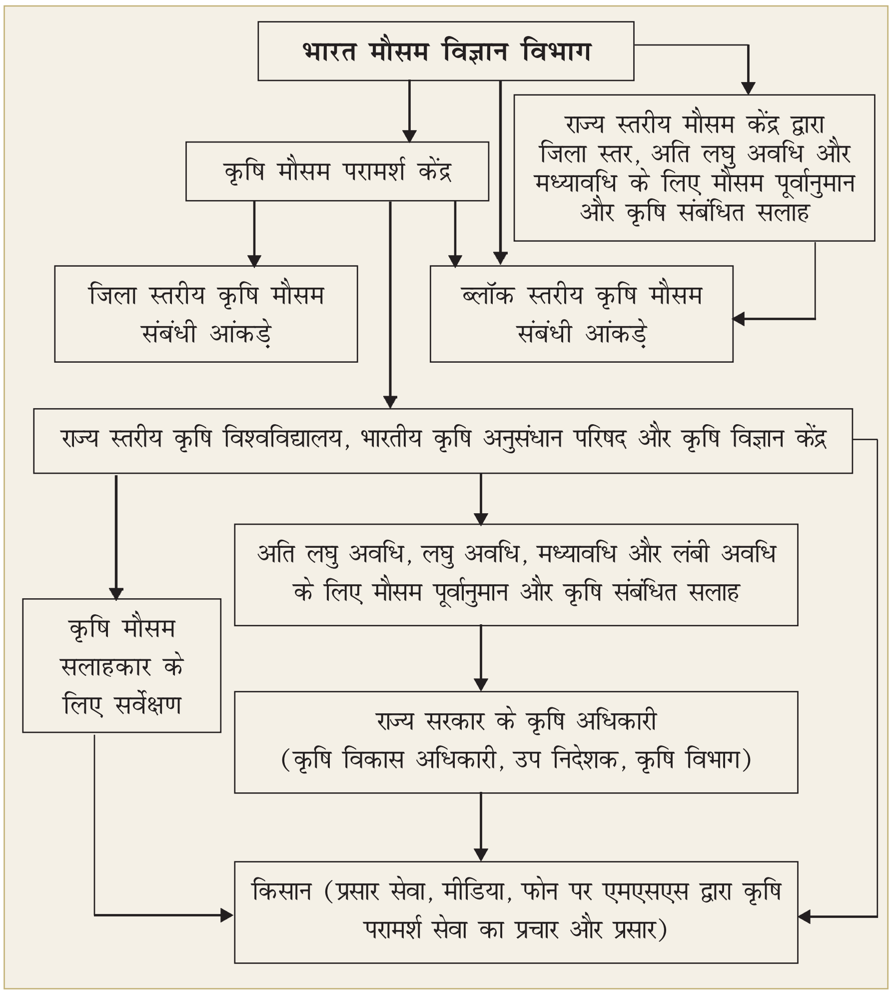

मौसम पूर्वानुमान आधारित कृषि सलाहकार प्रणाली

वर्षा की घटनाओं को ऐसे सरल तंत्रों द्वारा नहीं समझाया जा सकता है। किसी क्षेत्र में कब, कहां, कितनी और कितनी तीव्र वर्षा होने वाली है, यह वायुमंडल की विभिन्न विशेषताओं पर निर्भर करता है।

मौसम के भीतर मानसून के बदलाव दो प्रकार के हो सकते हैं: पहला समय में बदलाव होता है, जो वर्षा/मानसून गतिविधि की अवधि हो सकती है और फिर किसी विशेष क्षेत्र में वर्षा अभाव/मानसून का दमन हो सकता है। ये एक अवधि के भीतर एक क्षेत्र के लिए कई बार होते हैं। ये अस्थायी बदलाव किसी क्षेत्र में मानसून की देरी से शुरुआत या वापसी, सक्रिय और ब्रेक स्पेल, अर्द्ध/द्विसाप्ताहिक दोलन (10-25 दिनों) का रूप ले सकते हैं।

दूसरे, ये भिन्नताएं स्थानिक रूप से हो सकती हैं, जहां मानसून की वर्षा भारत के मध्य पठार और उत्तरी मैदानों से उत्तर-पूर्व और हिमालय की तलहटी में स्थानांतरित हो जाती है और देश के किसी विशेष क्षेत्र में क्षेत्रीय वायु प्रणालियों के कारण मानसून की विफलता होती है। इसके साथ ही प्रदूषित क्षेत्रों में एरोसोल द्वारा वर्षा का दमन होता है।

ग्रीष्मकालीन मानसून के विभिन्न उप-मौसमी परिवर्तन, प्रभाव और संभावित शमन

जब एक समय में केवल एक विशेष क्षेत्र पर विचार किया जाता है, तो ये परिवर्तन अक्सर ऐसी स्थितियां उत्पन्न कर सकते हैं, जो फसलों के लिए या तो सीधे पानी की कमी के कारण या अप्रत्यक्ष रूप से आर्द्र परिस्थितियों के कारण हानिकारक हो सकती हैं। ये कम वाष्पोत्सर्जन का कारण बन सकती हैं, इसलिए प्रकाश संश्लेषण को दबा सकती हैं, रोग/कीट संक्रमण को बढ़ा सकती हैं या यहां तक कि अत्यधिक वर्षा के कारण उपज या कुल फसल हानि पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। यहां समयबद्ध भिन्नताएं एक किसान के दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उसे केवल अपने खेतों की चिंता है।

बाढ़ के कारण जलमग्न खेत

मध्य-मौसम में लगभग दो सप्ताह में होने वाली वर्षा में भिन्नता

ऐसे मामलों में मानसून के मौसम की असामान्यता के कारण ब्रेक या सूखा कुछ दिनों से लेकर 3 सप्ताह तक चल सकता है। इस मामले में पानी की कमी बहुत हानिकारक हो सकती है। यह अवधि फसल की वृद्धि और अंततः उपज को काफी हद तक कम करने के लिए पर्याप्त होती है। यहां किसानों को उपलब्ध जल संसाधनों का बुद्धिमानी से उपयोग करने की सलाह दी जाती है। सीमांत और ताजे पानी की सिंचाई का मिश्रण फसल पर पानी के तनाव को कुछ हद तक कम कर सकता है, यदि इसे शुष्क अवधि के बीच में प्रयोग किया जाए।

मानसून की वर्षा में दीर्घकालिक परिवर्तन

मानसून के दौरान अंतर मौसमी उतार-चढ़ाव सामान्य से कम वर्षा की एक लंबी अवधि के रूप में प्रकट हो सकते हैं। यह स्थिति मौसम के अंत में सूखे जैसी परिस्थिति का भी कारण बन सकती है, जो भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून वर्षा में अक्सर देखी गई है।

उच्च तापमान के साथ शुष्क मौसम की लंबी अवधि गुलाबी सूंडी और पाउडरी मिल्ड्यू जैसे कीटों एवं रोगों को जन्म दे सकती है। किसान आमतौर पर मानसून की छोटी अवधि के दौरान अपनाई जाने वाली शमन रणनीतियों को जारी रख सकते हैं, जैसे मल्च कार्य, सीमित समय पर की जाने वाली जीवन रक्षक सिंचाई के जल संरक्षण के प्रभाव को बढ़ा सकता है। यहां प्रति एकड़ 100 लीटर पानी में पोटेशियम नाइट्रेट या पोटेशियम क्लोराइड का 2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव बहुत उपयोगी हो सकता है। यदि स्थिति में सुधार न हो, तो 15 दिनों के बाद इस छिड़काव को दोहराएं। लंबे समय तक चलने वाला सूखा, विशेष रूप से देर से पकने वाली फसलों को प्रभावित करता है, जो आमतौर पर प्रजनन अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक तेजी से पकती हैं। अतः किसानों को फसल की शीघ्र कटाई करनी चाहिए, ताकि पुष्पगुच्छ टूटने अथवा अन्य नुकसान से बचा जा सके।

मानसून की वर्षा की देरी से शुरुआत

मानसून की बारिश के बिना, अगस्त सबसे गर्म महीना होगा जैसा कि उत्तरी गोलार्ध के अधिकांश हिस्सों में होता है। किसी क्षेत्र में मानसून के देरी से आने का मतलब है कि फसलों को बुआई, अंकुरण और शुरुआती वनस्पति अवस्था के आवश्यक समय के दौरान मृदा में नमी नहीं मिलेगी। यहां पिछली फसल के भूसे, घास, प्लास्टिक का उपयोग करके मल्चिंग मददगार हो सकती है। इस तरह की मल्च को बुआई के तुरंत बाद या अंकुर निकलने के बाद लगाया जाना चाहिए। यह केवल 2 से 4 इंच की होनी चाहिए, ताकि पौधे की वृद्धि बाधित न हो। अगर बारिश इस तरह होती है कि शुरुआती फसल वृद्धि के मौसम में मृदा में नमी की कमी होती है तो किसान फिर से बुआई कर सकते हैं। पौधों की अधिकतम वृद्धि और उपज प्राप्त करने के लिए बारिश शुरू होने के तुरंत बाद फसलों की बुआई की योजना बनाने के लिए विस्तारित अवधि के पूर्वानुमान को ध्यान में रखना हमेशा बेहतर होता है।

मानसून की वर्षा की विलंबित वापसी/ समाप्ति

यह परिस्थिति क्षेत्र में मानसून परिसंचरण में रुकावट के कारण हो सकता है। ऐसी स्थितियों से फसल की परिपक्वता में देरी हो सकती है और बारिश के कारण कटाई योग्य उत्पाद का नुकसान भी हो सकता है। यहां किसानों को अपनी कटाई के उपकरण तैयार रखने चाहिए और वर्षा गतिविधि में थोड़ी भी रुकावट होते ही फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। इसके अलावा कटाई में देरी भी कर सकते हैं और अगली फसल को रिले में लगा सकते हैं। यदि फसल पहले ही कट चुकी है, तो अनाज को पानी और नमीरोधी जगह पर संग्रहित किया जाना चाहिए, ताकि अनाज सड़ न जाए।

भारी वर्षा की घटनाएं

बारिश की कमी और उसके कारण मृदा की नमी के अलावा, अत्यधिक वर्षा भी भारत में किसानों के लिए एक बड़ी समस्या है। देश में ऐसा अक्सर होता है। यहां, उप-मौसमी वर्षा का स्थानिक घटक भी महत्वपूर्ण है। उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में भारी बारिश अंततः बेसिन के निचले इलाकों में बाढ़ जैसी स्थिति उत्पन्न करती है। ये स्थितियां भारत के निचले गंगा के मैदानों जैसे बिहार में अधिक आम हैं। यदि बारिश के पूर्वानुमान में अत्यधिक वर्षा की घटनाएं दिखाई देने पर फसल के परिपक्वता तक पहुंचते ही उसे काट लेना उचित है। सिंचाई में देरी भी की जा सकती है और भारी बारिश से पहले धान के खेतों से पानी निकाला जा सकता है। चेक बांध ऐसी बाढ़ से होने वाले नुकसान को केवल नदियों के आसपास तक सीमित रखने में बहुत मददगार हो सकते हैं।

स्वस्थ धान की वृद्धि

कृषि सलाहकार सेवाओं की भूमिका

आने वाले मौसम की स्थिति का समय पर पूर्वानुमान, खासकर मानसून के मौसम में, किसानों के लिए बहुत मददगार हो सकता है। उदाहरण के लिए, तेलंगाना के खम्मम जिले में कृषि सलाहकार सेवाओं का पालन करने वाले किसानों ने क्रमशः मूंग और कपास के लिए 1.92 और 3.31 क्विंटल प्रति हैक्टर की बढ़ी हुई उत्पादकता प्राप्त की। यह बीजों को बेमौसम बारिश से बचाकर समय पर बुआई करके और कृषि सलाहकार सेवाओं के कारण समय पर कटाई करके उन्हें लगातार बारिश की एक और स्थिति से बचाकर हासिल किया गया।

राजस्थान के राजसमंद जिले में एक और उदाहरण है, जहां किसानों ने मृदा की नमी की कमी के कारण उपज में किसी भी कमी से पहले मक्का की फसल के दाने भरने की अवस्था में 1.0 प्रतिशत की दर से घुलनशील एनपीके (18:18:18) डाला। इंदौर के किसानों जैसे कई और उदाहरण हैं, जो न केवल तालाबों के माध्यम से अधिक बारिश के दौरान जल भराव को रोकते हैं, बल्कि मानसून के मौसम में लंबे समय तक सूखे की भविष्यवाणी होने पर उसी पानी का उपयोग करते हैं।

मौसम पूर्वानुमान जानकारी प्राप्त करने के साधन

कृषि मौसम पूर्वानुमान को किसान विभिन्न स्रोतों से प्राप्त कर सकते हैं। मौसम पूर्वानुमान का उद्देश्य तभी सार्थक होगा, जब किसान उसका उचित लाभ उठा पायें। इसके लिए किसान कहां से ये जानकारी प्राप्त करें। इस बात से भलीभांति अवगत करना भी मौसम सम्बन्धी संस्थाओं का कार्य हैं। भारत मौसम विज्ञान विभाग ने नवीनतम उपकरणों और प्रौद्योगिकियों के आधार पर डेटा प्राप्त करने और मौसम पूर्वानुमान और चेतावनी सेवाओं के प्रसार में सुधार के लिए हाल के वर्षों में विभिन्न पहल की हैं। इसमें वेबसाइट, ईमेल, एस.एम.एस. और सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, एक्स, इंस्टाग्राम आदि के माध्यम से पूर्वानुमान और सूचनाओं का प्रसार शामिल है।

भारत मौसम विज्ञान विभाग ने विभिन्न अवलोकनों और पूर्वानुमान उत्पादों के लिए ए.पी.आई. विकसित किए हैं।

वर्षारहित बादल और नमी वाली परिस्थितियां

किसी क्षेत्र में वर्षा केवल इसलिए नहीं होती, क्योंकि आकाश में बादल होते हैं। इसके लिए यांत्रिक मिश्रण या तेज हवाओं के कारण बादलों में लटकी हुई छोटी-छोटी पानी की बूंदों का किसी तरह से एकत्र होना आवश्यक है। दिलचस्प बात यह है कि इस तरह की वर्षा की घटना के लिए तत्काल नमी का स्रोत मृदा और पौधों से विलुप्त हुआ पानी और मजबूत संवहन होता है, यह प्रक्रिया तब एक क्षेत्र में फैल सकती है और बड़े पैमाने पर वर्षा का कारण बन जाती है। कई मामलों में उपरोक्त प्रक्रिया नहीं होती है और बारिश न होने पर गर्मियों के मानसून में उमस भरा मौसम बना रहता है। यह मौसम कई कीटों जैसे कि तेला के साथ-साथ विल्ट और रॉट जैसे रोगों के प्रसार के लिए आदर्श है। यहां, मौसम का पूर्वानुमान कीटों की आबादी को आर्थिक सीमा स्तर तक पहुंचने से रोकने के लिए कीटनाशक का पूर्व-प्रयोग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भले ही हवा संतृप्त न हो, लेकिन बादलों की उपस्थिति रात के तापमान को बढ़ा सकती है जिससे पैदावार कम हो सकती है। ऐसी स्थिति में रात को छोटी सी सिंचाई मददगार हो सकती है।

बहुवर्षीय नेपियर घास का सफल उत्पादन

चंदन कुमार, अरविन्द सिंह तेतरवाल और **झब्बरमल तेतरवाल**

"आदिकाल से ही कृषि के साथ पशुपालन का बराबरी का नाता रहा है। पुराने समय में पशुओं के लिए हरा चारा बहुतायत में उपलब्ध रहता था। आज से 50-60 वर्ष पहले गोचर, ओरण, चरागाह और पहाड़ी क्षेत्र में पशुओं के लिए वर्षभर हरा चारा उपलब्ध रहता था। उस समय 6-7 माह तक अच्छी एवं लगातार वर्षा भी होती रहती थी। पशुओं की संख्या अधिक, मानव की संख्या कम, उपलब्ध भूमि पर फसलों की खेती कम, मनुष्य की आजीविका का अधिकतर भाग जंगल, पशुओं आदि से पूरा हो जाता था। चारे की कमी तो विशेषकर पिछले 10-15 वर्षों से अधिक हो रही है, जब से अकाल पड़ने शुरू हुए। इस चारे की कमी को पूरा करने के लिए किसान के पास चारे के रूप में ज्वार, बाजरा, मक्का, रिजका आदि हैं। इस समय रिजका, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि चारा फसलें आमतौर पर किसानों द्वारा उगाई जाती हैं। इसमें ज्वार, बाजरा तथा मक्का की वर्ष में 2-3 बार बुआई करनी पड़ती है। ऐसा करने पर भी किसानों को वर्षभर लगातार हरा चारा उपलब्ध नहीं हो पाता है। इस प्रकार की चारा फसलें लगाने से किसानों को बीच-बीच में महीने या 2 महीने पशुओं को बिना हरे चारे के ही रखना पड़ता है। इससे पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है एवं दूध की उत्पादन क्षमता घट जाती है। इसके साथ ही चारा उत्पादन लागत भी काफी अधिक आती है। किसान हरे चारे के लिए बहुवर्षीय- बहुकटाई वाली नेपियर या हाथी घास लगा सकते हैं। नेपियर घास किसान की चारा समस्या का समाधान कर सकती है। इस घास में 8.7 से 10.2 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन, 28 से 30.5 प्रतिशत क्रूड फाइबर तथा 10 से 11.5 प्रतिशत राख शुष्क पदार्थ के आधार पर पाई जाती है, जो इसे स्वादिष्ट, रसयुक्त, कोमल एवं अच्छी उपज के साथ ही वर्ष दर वर्ष हरे चारे की अच्छी गुणवत्ता बनाए रखती है।"

नेपियर एक बहुवर्षीय चारा फसल है, जिसे आमतौर पर हाथी घास भी कहते हैं। इसे हाथी घास इसलिए कहते हैं, क्योंकि इसकी ऊंचाई 10 से 15 फीट हो जाती है, जिसमें हाथी भी आसानी से छुप सकते हैं।

नेपियर की बुआई बहुत आसान है, जिसे कोई भी किसान कर सकता है। एक पौधे से 50 से 60 तक कल्ले या टिलर्स निकलते हैं। यह चारा खाने में पौष्टिक एवं स्वादिष्ट है, जिसे पशु बड़े चाव से खाते हैं।

काजरी-कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली-मारवाड़-306401 (राजस्थान)

सिफारिशें

- खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
- अच्छे अंकुरण के लिए खेत का बढ़िया भुरभुरा होना आवश्यक।
- बुआई के लिए स्वस्थ जड़ अथवा तनों को काम में लिया जाना चाहिए।
- घास बुआई के लिए दो से तीन गांठ वाले कल्ले काम में लिये जाने चाहिए।
- भरपूर खाद का प्रयोग करना जरूरी है।
- प्रत्येक कटाई के बाद नाइट्रोजन उर्वरक या वेस्ट डीकंपोजर का प्रयोग अवश्य करें।
- पहली कटाई 12 से 15 सें.मी. ऊंचाई से की जाए ताकि बाद की कटाइयों में बढ़वार अच्छी हो सके।
- प्रत्येक कटाई के बाद शीघ्र सिंचाई जरूर करें।
- बुआई के बाद आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई करें।

कोमल एवं रसयुक्त पत्तेदार चारा पशुओं के लिए बहुत ही फायदेमंद है। इस घास की पहली कटाई 60 से 70 दिनों में होती है, जबकि बाद की कटाइयां 30 से 35 दिनों में 3 से 4 फीट ऊंचाई की घास आसानी से मिल जाती है। तेज गर्मी में यह घास अधिक बढ़वार देती है। इस घास को जितना अधिक खाद और पानी देते हैं, यह उतनी ही अधिक बढ़वार देती है। इसमें 1 वर्ष में कम से कम 7 से 8 कटाइयां मिलती हैं। इसका पाचन आसान होने से यह पशु स्वास्थ्य के लिए बेहद फायदेमंद है तथा पशु इसे बहुत ही चाव से खाते हैं।

भूमि एवं जलवायु

नेपियर घास लगभग सभी प्रकार की भूमि में आसानी से उगाई जा सकती है। जल निकास उत्तम और साथ ही भूमि का पी-एच मान 6.5 से 8 हो तो इसके लिए अच्छा रहता है। पर्याप्त गोबर की खाद का प्रयोग एवं मौसम अनुकूल रहे, तो अच्छी उपज प्राप्त होती है। इस घास में तेज गर्मी एवं सूखा सहन करने की क्षमता होती है इसलिये जहां सिंचाई की कम व्यवस्था है, वहां के किसानों के लिए यह घास किसी वरदान से कम नहीं है।

फायदेमंद है नेपियर चारा उत्पादन

उन्नत किस्में

नेपियर घास की उन्नत किस्में सीओ 4, सीओ 5 तथा आईजीएफआरआई 6 सर्वाधिक उपयुक्त हैं। नेपियर घास की बुआई का सबसे अच्छा समय वर्षा ऋतु या फिर फरवरी-मार्च है। बरसात होने के बाद में इसे लगा सकते हैं या फिर रबी फसलों के कटने के बाद जब गेहूं कट जाते हैं, उसके बाद में नेपियर घास लगा सकते हैं, जिससे उसका फुटाव अच्छा होता है। नेपियर में बीज नहीं बनता है।

नेपियर आमतौर पर दो प्रकार से लगाई जाती है-पहला जड़युक्त पौधे तथा दूसरा तने के टुकड़ों द्वारा। अनुकूल वातावरण या मौसम होने पर जड़ या तने से बुआई की जा सकती है। आज की जो विषम परिस्थितियां हैं उस स्थिति में जड़युक्त पौधे लगाना उपयुक्त रहता है। पौधे का जमाव 100 प्रतिशत हो जाता है और बढ़वार भी शीघ्र शुरू होती है।

बुआई का तरीका

नेपियर घास बहुत ही कोमल, मुलायम, रसयुक्त एवं पौष्टिक चारा है। बुआई के लिए इसका पौधा बहुत ही कठोर है यानी नेपियर की पौध को किसी भी मृदा में, कैसे भी खेत की तैयारी करके लगाया जा सकता है, जब नेपियर घास से लगातार 5 से 6 वर्ष तक वर्ष में 7-8 कटाइयां लेनी होती हैं, तो सर्वप्रथम खेत की अच्छी तैयारी यानी खेत से झाड़ियां आदि निकालें एवं डिस्क प्लो से एक जुताई करें। इसके बाद दो-तीन बार कल्टीवेटर से खेत की बढ़िया जुताई कर खेत को महीन भुरभुरा बनाएं। इसके साथ ही खेत में पर्याप्त मात्रा में अच्छी सड़ी एवं गली गोबर की खाद का प्रयोग करें।

नेपियर की बुआई आमतौर पर पंक्तियों में की जाती है। दो से तीन फीट या 3-4 फीट पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी रखी जाती है। बुआई समतल क्यारियों में या क्यारी बनाकर, क्यारी पर या क्यारी के ढलान पर भी की जा सकती है।

स्वस्थ एवं भरपूर उपज

नेपियर घास की लागत कम करने के लिए खेत की तैयारी के बाद कल्टीवेटर के आगे के हल को ऊपर कर पीछे के हल दबाकर लगाने से पंक्तियां बन जाती हैं। किसानों को उन्हीं पंक्तियों में एक पंक्ति छोड़कर बुआई करनी चाहिए। इससे बुआई आसानी से एवं शीघ्र हो जाती है, साथ ही लागत भी कम आती है।

बीज की मात्रा

इसे जड़ वाले पोधे या तने (गन्ने की तरह) के टुकड़ों से लगाया जा सकता है। एक बीघा में लगाने के लिए 2500 जड़ वाले पौधे अथवा 3500 से 5000 तक के टुकड़ों की आवश्यकता होती है।

बुआई

तैयार खेत में समतल क्यारियों में जड़युक्त पौध को 3×3 फीट या 2×3 फीट के अंतराल पर लगाकर बुआई करनी चाहिए। तनों के टुकड़ों को लगाने के लिए पौधे एवं पंक्ति की उचित दूरी पर घास के टुकड़ों की रोपाई करें। तनों के टुकड़े में कम से कम 2 से 3 गांठें होनी चाहिए। तने के टुकड़ों को तिरछा लगाना चाहिए, जिसमें कम से कम एक या दो गांठें जमीन के अंदर आ जाएं, ताकि जड़ का फुटाव आसानी से हो या फिर तने के टुकड़ों को गन्ने की तरह उचित दूरी पर लगाया जा सकता है। बुआई के तुरंत बाद सिंचाई करने से जमाव अच्छा होता है।

सिंचाई

नेपियर घास एक बहुवर्षीय-बहुकटाई वाली चारा फसल है, जिसे गर्मियों में 10 से 12 दिनों तथा सर्दियों में 15 से 20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। वर्षा के मौसम में वर्षा के अंतराल को देखते हुए आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। सिंचाई का अंतराल मौसम, भूमि का प्रकार, खाद की मात्रा एवं फसल की बढ़वार आदि पर निर्भर करता है। नेपियर में जितना खाद एवं पानी देंगे, उतनी ही बढ़वार अधिक

होगी। अच्छी बढ़वार के लिए प्रत्येक कटाई के बाद समय पर सिंचाई करने से चारे की पुनः वृद्धि अच्छी होती है। जहां बूंद-बूंद सिंचाई प्रणाली की व्यवस्था है, वहां फसल में सिंचाई करने से पौधों का जमाव अच्छा होता है। आवश्यकतानुसार समय पर पानी देने से फसल की बढ़वार अच्छी होती है साथ ही पानी की बचत भी होती है।

खाद एवं उर्वरक

अच्छी पैदावार एवं अधिक पत्तियों वाला रसयुक्त पौष्टिक चारा लेने के लिए जरूरी है कि बुआई पूर्व खेत की तैयारी करें। इसके लिए अंतिम जुताई से पहले खेत

पोषण से भरपूर चारा

बहुवर्षीय एवं बहुकटाई वाली चारा फसल

में भरपूर देसी सड़ी हुई गोबर की खाद 15 से 20 टन प्रति हैक्टर दी जानी चाहिए। इसके साथ ही मृदा जांच के आधार पर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश भी दिया जाना चाहिए। प्रत्येक कटाई के बाद 40 से 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर प्रयोग किया जाए। यदि संभव हो तो वेस्ट डीकम्पोजर का छिड़काव 10 दिनों के अंतराल पर करें साथ ही प्रत्येक सिंचाई के साथ 200 से 300 लीटर वेस्ट डीकम्पोजर प्रति बीघा दिया जाना चाहिए। वेस्ट डीकम्पोजर का प्रयोग करने से घास के जमाव के साथ ही फसल की बढ़वार अच्छी होने से हरे चारे का उत्पादन निश्चित रूप से बढ़ता है।

किसानों के विचार

- हकीम भाई, परबतसर, नागौर का कहना है कि उन्होंने पिछले पांच वर्षों से नेपियर घास लगा रखी है एवं उसमें ड्रिप सिंचाई प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है। इस घास में बहुत बढ़वार होती है। फसल ऊंचाई 4 से 5 फीट बड़ी होने पर कटाई लेकर पशुओं की चारा संबंधी जरूरत पूर्ण होती है। रुचिकर होने के कारण पशु पूरा चारा खा जाते हैं। जिससे चारा बेकार नहीं जाता है। दूध का उत्पादन 8 लीटर से बढ़कर 10 लीटर हो गया। इसके साथ ही पहले की तुलना में चारा खर्च आधा हो गया।
- मादुराम जी, नागौर का कहना है कि नेपियर घास बहुत ही बढ़िया तथा अच्छी बढ़वार वाली चारा फसल है। पहले जहां दूध 3 से 4 लीटर होता था अब 5 से 7 लीटर हो गया है। गाय इस घास को दूसरे चारे की तुलना में अधिक खाती है जिससे दूध की मात्रा में बढ़ोतरी हुई है। नेपियर घास वर्षभर पशुओं को मिलता रहता है जिससे दूध की मात्रा एक समान बनी रहती है।
- भंवर दान, पोखरण, जैसलमेर का कहना है कि उन्होंने अपने फार्म पर पिछले 4 वर्षों से नेपियर घास लगा रखी है। इस घास को गाय एवं घोड़े बड़े चाव से खाते हैं। नेपियर घास लगातार खिलाने से एक से डेढ़ कि.ग्रा. दूध उत्पादन बढ़ता है। इसके साथ ही पशु के शरीर में स्फूर्ति आती है। बंजर भूमि में भी खाद आदि देकर इस घास का बढ़िया उत्पादन लिया जा सकता है।
- भरत चौधरी, लीलकी फार्म, कोसेलाव, पाली का कहना है कि इस घास का चारा 30 से 35 दिनों में तैयार हो जाता है। इसे एक बार लगाने पर यह 5 से 7 वर्ष चलती रहती है जबकि ज्वार, बाजरा एवं मक्का को वर्ष में दो से तीन बार लगाना पड़ता है। इससे लागत बढ़ने के साथ ही पशुओं को लगातार हरा चारा नहीं मिलता है। ज्वार एवं बाजरा खिलाने से दूध नहीं बढ़ता जबकि नेपियर की 12 महीने उपलब्धता होने के कारण 1 से 2 कि.ग्रा. दूध में बढ़ोतरी होती है। इस घास को जितना खाद तथा पानी देंगे, उतनी ही इसकी बढ़वार होती है।

कटाई

फसल लगाने के 60 से 70 दिनों बाद पहली कटाई की जाती है तथा बाद की कटाइयां 30 से 35 दिनों में 3 से 4 फीट ऊंचाई होने पर की जाती हैं। फसल की बढ़वार खाद, पानी एवं मौसम पर निर्भर करती है। घास की कटाई भूमि सतह से 12 से 15 सें.मी. की ऊंचाई से करने पर पुनः फुटाव शीघ्र होता है। नेपियर घास में आमतौर पर किसी भी प्रकार के कीट एवं रोगों का प्रकोप नहीं होता है।

उत्पादन क्षमता

मृदा उर्वरता एवं उचित जल प्रबंधन द्वारा प्रतिवर्ष औसतन 120 से 180 टन हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

कृषि विज्ञान केंद्र, काजरी, पाली द्वारा जिले के पाली ब्लॉक में 64, बाली में 77, रोहट में 41, सुमेरपुर में 96, देसूरी में 82, जैतारण में 112, रायपुर में 53, सोजत में 76, रानी में 98, तथा मारवाड़ जंक्शन ब्लॉक में 71 प्रगतिशील कृषकों ने नेपियर घास की उन्नत कृषि तकनीक को अपने दुधारू पशुओं के लिए अपनाया है। इस प्रकार इस तकनीक को जिले के कुल 770 जागरूक कृषकों ने अपनाया है।

एकीकृत जलीय कृषि से सतत आजीविका

गुलगुल सिंह[1] और **बलबीर सिंह खद्दा**[2]

"एकीकृत जलीय कृषि का तात्पर्य मछली, खेती और पशुपालन के एकीकरण से है। इसमें एक क्षेत्र का अपशिष्ट दूसरे क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। एकीकृत जलीय खेती में मछली प्रमुख उत्पादन है। इस प्रकार की खेती संसाधन उपयोग में बहुत अधिक प्रभाव प्रदान करती है। एक प्रणाली से अपशिष्ट या उप-उत्पाद का दूसरी जगह कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाता है। इससे उसी क्षेत्र में खाद्य उत्पादन को अधिकतम किया जाता है। एकीकृत जलीय कृषि में संसाधन उपयोग दक्षता भरपूर लाभ है। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य फसल में विविधता लाकर जोखिम को कम करना और छोटे पैमाने के घरों के लिए अतिरिक्त आय एवं आहार प्रदान करना है।"

एकीकृत कृषि प्रणाली में प्राथमिक उत्पादक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, वे सौर ऊर्जा की मदद से, जैविक पदार्थ में उपज लाते हैं। फाइटोप्लांक्टन को प्राथमिक उत्पादक माना जाता है। ये प्राथमिक उपभोक्ता जूप्लैंक्टन खाते हैं। इस तरह से खाद्य श्रृंखला शुरू होती है। खाद्य श्रृंखला द्वारा ऊर्जा का प्रवाह एक स्तर से दूसरे स्तर तक होता है।

खेती या पशुपालन प्रणाली से निकलने वाले अपशिष्ट को प्राथमिक उत्पादकों द्वारा सीधे खाद के रूप में उपयोग किया जाता है।

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, एस.ए.एस नगर (मोहाली); [2]गुरु अंगद देव पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, लुधियाना

पशु सह मछलीपालन-लाभ से भरपूर

खेती फसल से निकलने वाले उप-उत्पादों का उपयोग प्रणाली में रहने वाले जलीय जीवों द्वारा चारे के साथ-साथ खाद के रूप में भी किया जाता है।

खेती या पशुधन खाद जब मछलियों से भरे तालाब में उपयोग की जाती है, तो यह आहार के रूप में विभिन्न मार्गों में खाद्य श्रृंखला में काम करती है। यह स्वपोषियों के लिए खनिजों का स्रोत और मछलियों या जूप्लैंक्टन द्वारा सीधे उपभोग किए जाने वाले जैविक पदार्थ का स्रोत है। पशुधन या खेती से उपलब्ध अपशिष्ट का उपयोग मृदा-पानी की उर्वरता में सुधार के लिए किया जाता है। इनका उपयोग नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश जैसे विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

एकीकृत जलीय कृषि प्रणालियों के प्रकार

भारत में किसानों द्वारा मूल रूप से दो प्रकार की एकीकृत जलीय कृषि प्रणालियां अपनाई जाती हैं। खेती-जलीय खेती प्रणाली में धान-मछली, मशरूम-मछली, बागवानी-मछलीपालन प्रणाली शामिल हैं, जिसमें मछलीपालन पर प्रमुख जोर दिया जाता है। पशुपालन-मछली प्रणाली में मवेशी-मछली, शूकर-मछली, मुर्गी-मछली, बत्तख-मछली शामिल हैं, जिनका मुख्य ध्यान उत्पादकता बढ़ाने पर होता है। इस प्रणाली को पोषक तत्वों के उचित पुनर्चक्रण के लिए नवाचार माना जाता है, जो खेती की गहनता, जैव संसाधनों के उचित उपयोग, प्रोटीन के उत्पादन, कृषि विविधीकरण और पर्यावरणीय स्थिरता में योगदान देता है।

धान-मछली पालन प्रणाली

धान, दुनिया की आधी आबादी के लिए प्रमुख खाद्य स्रोत है। एशिया में उत्पादित 90 प्रतिशत से अधिक धान ग्रामीण किसानों के पोषण का मुख्य स्रोत है। छोटे परिवार के आहार के लिए धान के खेत से जंगली मछलियों को इकट्ठा करना एक पुरानी प्रथा है। भारत में प्राचीन समय से धान के खेतों में मछलीपालन का चलन शुरू हुआ था।

धान-मछली प्रणाली की उचित योजना उच्च उत्पादकता, कृषि आय में वृद्धि सुनिश्चित करती है। धान-मछली एकीकृत प्रणाली में, धान के खेत आमतौर पर वर्ष में 3-8 महीने तक पानी बनाए रखते हैं। यह मछलीपालन का अवसर प्रदान करता है और किसान को अतिरिक्त आय के साथ ऑफ-सीजन व्यवसाय प्रदान करता है। मछली तालाबों में फसल अवशेष उत्पादक सामग्री के रूप में प्राप्त होते हैं। एकीकृत धान-मछलीपालन को अपनाने से किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इससे गरीबों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति स्थिर हुई है।

जलीय पौधे-मछली प्रणाली

इस एकीकरण प्रणाली में, विभिन्न प्रकार के जलीय पौधों का उपयोग मुख्य रूप से शाकाहारी मछलियों के लिए आहार के रूप में किया जाता है। ग्रास कार्प जैसी शाकाहारी मछलियां सीधे लेमना, वोल्फिया, स्पाइरोडेला और जल फर्न अजोला जैसे विभिन्न जलीय खरपतवारों का सेवन करती हैं। इन तैरने वाले पौधों में उच्च प्रोटीन, कम वसा, फाइबर और कम सेल्यूलोज होते हैं। जलीय खरपतवारों को ग्रास कार्प द्वारा खाया जाता है और मछली के मलमूत्र का उपयोग तालाब के लिए खाद का कार्य करता है। अजोला मछली तालाबों में एक नाइट्रोजनयुक्त जैव उर्वरक है, जो सौर ऊर्जा को अवशोषित कर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम का उत्पादन करता है। जलीय कृषि प्रणाली में आहार घटक के रूप में अजोला का उपयोग विशेष महत्व रखता है। इसमें उच्च प्रोटीन सामग्री (13-30 प्रतिशत) होती है।

मवेशी-मछली पालन प्रणाली

ग्रामीण भारत में गाय का गोबर सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली खाद है। लगभग 400-450 कि.ग्रा. वजन वाली एक गाय सालाना लगभग 400-500 कि.ग्रा. गोबर और 3,500-4,000 लीटर मूत्र उत्सर्जित करती है। गाय के गोबर में पोषक तत्व और लाभदायक बैक्टीरिया होते हैं। गाय के गोबर का अपचित चारा सीधे मछलियों द्वारा खाया जाता है। गाय के गोबर की जैविक ऑक्सीजन की मांग बहुत कम है। यह जुगाली करने वाले पशुओं में सूक्ष्मजीवों द्वारा पहले से ही विघटित हो चुका होता है। 5-6 गायों का एक समूह 3000-4000 कि.ग्रा. मछली/

बागवानी-मछली पालन प्रणाली

फल और सब्जियां पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। तालाब के बांध का उपयोग आमतौर पर बागवानी के पौधे जैसे-फूल, कृषि वानिकी, तिलहनी फसलें आदि उगाने के लिए किया जाता है। तालाब के पानी का उपयोग फसल की सिंचाई के लिए किया जाता है और पोषक गाद का उपयोग आधार खाद के रूप में किया जाता है। इस प्रणाली की सफलता पौधों के प्रकार पर निर्भर करती है। इस प्रणाली में उपयोग किए जाने वाले पौधे बौने किस्म के, कम छायादार, सदाबहार और मौसमी होने चाहिए। इस प्रकार आम, केला, पपीता और नीबू की बौनी किस्में उपयुक्त हैं। ये फसलें तालाब में सूर्य के प्रकाश को बाधित नहीं करती हैं। बेहतर लाभ के लिए बैंगन, टमाटर, खीरा, भिंडी, तरबूज, मूली, शलजम, गाजर, फूलगोभी जैसी मौसमी सब्जियां उगाई जाती हैं। गुलाब, चमेली, गेंदा जैसे फूल किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान करते हैं। यह प्रणाली न केवल अकेले जलीय कृषि की तुलना में 20-25 प्रतिशत अधिक लाभ प्रदान करती है, बल्कि पूरे वर्ष किसानों को भी काम में लगाने में मदद करती है। तालाब के बांध पर हरी सब्जियां, केला और पपीता जैसी फसलें धान की खेती की तुलना में लगभग रुपये 35,000-40,000/हैक्टर/वर्ष अधिक शुद्ध आय प्रदान करती हैं।

हैक्टर/वर्ष का उत्पादन करने के लिए पर्याप्त मात्रा में गोबर और मूत्र प्रदान कर सकता है। यह प्रणाली 9,000 लीटर दूध प्रति वर्ष प्रदान करती है।

कुक्कुट-मछली पालन प्रणाली

इस एकीकरण प्रणाली में, मुर्गी के मल को मछली तालाब में खाद के रूप में उपयोग किया जाता है। प्रबंधन प्रथाओं में चूजों की अच्छी गुणवत्ता, आवास, आहार, पानी की ट्रे और रोगों पर नियंत्रण शामिल हैं। मुर्गियों का घर तालाब के किनारे या तालाब के अंदर बनाया जाता है। इस प्रणाली में, मुर्गी को 0.3-0.4 मीटर जगह की आवश्यकता होती है। पाली गई मुर्गियों का चयन मांस की गुणवत्ता, अंडे के प्रकार और मछली के साथ उपयुक्तता पर निर्भर करता है। उन्नत पालन के लिए पोल्ट्री हाउस में पीने के लिए स्वच्छ पानी का उपयोग और स्वच्छता की स्थिति सबसे महत्वपूर्ण है। पक्षियों का विपणन पालन के 5-6 सप्ताह बाद शुरू होता है, जब उनका वजन लगभग 1.2-1.5 कि.ग्रा. हो जाता है। तालाब के पानी की जैविक उत्पादकता बढ़ाने के लिए कुक्कुट अपशिष्ट जैसे बचे हुए फीड, मल और अपशिष्ट का उपयोग किया जाता है। एक वयस्क मुर्गी पर्याप्त खाद प्रदान करने के लिए प्रति वर्ष लगभग 25-30 कि.ग्रा. मलमूत्र का उत्पादन करती है। एक हैक्टर जल निकाय में 1,000 पक्षी, 90,000-100,000 अंडे और 1,500 कि.ग्रा. मांस प्रति वर्ष के साथ पर्याप्त खाद का उत्पादन करते हैं।

शूकर-मछली प्रणाली

यह एकीकरण प्रणाली अन्य एकीकरण प्रणालियों की तुलना में अधिक लाभदायक है। यह प्रणाली कम लागत पर मांस और मछली दोनों प्रदान करती है। लगभग 70-90 कि.ग्रा. के शूकर के लिए लगभग 3-4 मीटर की जगह की आवश्यकता होती है। किसानों द्वारा उपयोग की जाने वाली लोकप्रिय उपयुक्त शूकर प्रजातियां व्हाइट यॉर्कशायर और हैम्पशायर हैं। शूकर के मलमूत्र का उपयोग तालाब को निषेचित करने के लिए किया जाता है जिसे सीधे तालाब में डाला जाता है या तालाबों में डालने से पहले आंशिक रूप से विघटित किया जाता है। मुख्य रूप से ग्रामीण भारत में किसान कृषि-औद्योगिक अपशिष्ट जैसे प्रेस मड, मुर्गी पालन की बूंदें और सड़े हुए आलू, टमाटर, कद्दू आदि जैसी सब्जियों के अपशिष्ट को शूकर के चारे (मक्का, मूंगफली, गेहूं का चौकर) के साथ मिलाते हैं। 500 से 600 कि.ग्रा./वर्ष और 40-45 शूकरों का मलमूत्र 1 हैक्टर तालाब के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद प्रदान करता है। शूकर के गोबर के इस्तेमाल से तालाब में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है जो फाइटोप्लांक्टन और जूप्लैंक्टन को बढ़ाता है। इस प्रणाली के अंतर्गत 8,000-8,500 फिंगरलिंग/हैक्टर की स्टॉकिंग घनत्व पर बिना किसी चारे और खाद के 12 महीनों में तालाब से लगभग 3-4 टन/हैक्टर मत्स्य पालन प्राप्त होता है।

बत्तख-मछली प्रणाली

यह प्रणाली बहुत फायदेमंद है। यह मांस के साथ-साथ अंडे भी प्रदान करती है। तालाब में, बत्तखें दिन के समय स्वतंत्र रूप से घूमती हैं और कई जलीय जीवों और पौधों को खाती हैं। पोषक तत्व स्रोत के रूप में इस्तेमाल किए जाने वाले बत्तखों के अपशिष्ट से मछलियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले प्राकृतिक खाद्य से जीवों के उत्पादन के लिए कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस मिलता है।

बत्तख-मछली एकीकरण प्रणाली में बत्तखें युवा मेंढक, घोंघे, ड्रैगनफ्लाई और टैडपोल खाती हैं। इनका मलमूत्र सीधे तालाबों में जाता है, जिसमें आवश्यक पोषक तत्व, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस होते हैं। इससे प्राकृतिक मछली खाद्य जीवों का उत्पादन बढ़ता है। बत्तखों के शेड में अच्छा वायु संचालन, उपयुक्त स्थान, अंडे देने के लिए बक्से, अंडे इकट्ठा करने के लिए ट्रे होनी चाहिए। इस प्रणाली में, तालाबों के बीच में या तालाब के बांधों पर शेड बनाए जाते हैं।

एकीकृत बत्तख पालन

बेहतर आय के लिए एक दिन की बत्तख के शिशुओं के साथ 1.5-2.0 इंच आकार की मछली के शिशु पालना सबसे उपयुक्त है। बत्तख 6 महीने की उम्र के बाद अंडे देना शुरू कर देती है। यह प्रजाति, पोषण और पर्यावरण के आधार पर 2-3 वर्ष तक जारी रहता है। मछलियों की बहु-प्रजाति संस्कृति में, इस प्रणाली से 4,000-6,000 अंडे और 500-750 कि.ग्रा. बत्तख के मांस के अलावा 3,000-4,000 कि.ग्रा./हैक्टर/वर्ष मछली की उम्मीद की जाती है। अंडे और मांस से होने वाली आय से बत्तख के पालन और आहार की लागत पूरी हो जाती है और मछली की बिक्री से प्राप्त धन लाभ बन जाता है। ■

मुर्गीपालन ईकाई

सिंचाई जल का परीक्षण एवं प्रबंधन

किरण कुमारी[1], **अंकुश कम्बोज**[2], **विकास**[2] और **सुशील**[2]

"जल प्रकृति की अमूल्य देन है। मनुष्य ही नहीं पेड़-पौधे, पशु-पक्षी कोई भी पानी के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। जल के बिना तो पूरी वनस्पति ही समाप्त हो जाएगी। कृषि विकास किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड है। सघन फसल उत्पादन में पानी एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण घटक है, जिसका कोई विकल्प नहीं है। सिंचाई के पानी की गुणवत्ता एवं उसका संघटन फसल की सफलता को बहुत हद तक प्रभावित करता है। सिंचाई के लिए जल स्रोत की उपयुक्तता का आकलन करने के लिए सिंचाई के पानी का परीक्षण करना महत्वपूर्ण है। प्राय: किसान जमीन में उपलब्ध पोषक तत्वों को जानने के लिए अपने खेत की मृदा का परीक्षण तो करवाते हैं, किंतु पानी का परीक्षण करवाने की जरूरत महसूस नहीं करते। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि वे पानी की गुणवत्ता के आधार पर फसलों का चयन नहीं कर पाते और फसल को पर्याप्त मात्रा में उर्वरक देने के बाद भी उन्हें अच्छी पैदावार नहीं मिलती। अत: किसान फसल की बीजाई एवं बाग लगाने से पहले खेत की मृदा का परीक्षण करवाने के साथ ही पानी का स्वास्थ्य कार्ड भी बनवायें एवं इसके आधार पर उपयुक्त फसलें बोयें।"

सिंचाई में प्रयोग किये जाने वाले पानी का परीक्षण भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। यदि पानी लवणीय या क्षारीय होगा, तो अवश्य ही उस पानी से सिंचित होने वाली बहुमूल्य मृदा भी अंतत: लवणीय या क्षारीय बन जाएगी। परीक्षण द्वारा पानी की गुणवत्ता, पी-एच मान, विद्युत चालकता, पानी की कठोरता एवं पानी के लवणीय/क्षारीय होने की जानकारी मिल जाती है जिसके आधार पर पानी का प्रयोग किया जा सकता है।

खारे पानी का सिंचाई में उपयोग

कृषि फसल उत्पादन सिंचाई पर बहुत निर्भर करता है। पर्याप्त ताजा पानी की कमी के कारण दुनिया के कई शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में निम्न गुणवत्ता वाले (खारा) पानी का उपयोग गति पकड़ रहा है। खारे पानी से जमीन एवं फसल पर कम से कम प्रभाव पड़े इसके लिए निम्न क्रियाओं को अपनाया जा सकता है:

वर्षा के पानी का उचित उपयोग

खारे पानी के उपयोग से पड़ने वाले दुष्प्रभाव को वर्षा के पानी के समुचित उपयोग से कम किया जा सकता है। इस पानी को खेत से बाहर न जाने दें। वर्षा ऋतु से पहले जमीन को समतल कर जुताई करें एवं छोटी-छोटी क्यारियों में बांटकर डोलबंदी करें। इससे वर्षा का पानी सब जगह बराबर जमीन में रिसकर नीचे चला जाएगा। यह पानी अपने साथ लवण बहाकर नीचे ले जाता है एवं ऊपर की मृदा में लवण कम हो जाते हैं।

सिंचाई के तरीके

खारे पानी से लगातार सिंचाई करने से, प्रत्येक सिंचाई के बाद नमक की कुछ मात्रा मृदा में इकट्ठी हो जाती है। यदि साथ-साथ मिट्टी में जमा होने वाले नमक का निक्षालन नहीं हो, तो धीरे-धीरे जड़ मंडल में इतना नमक इकट्ठा हो जाता है कि उपज घटने लगती है। इसके लिए निम्न सुझाव अपनाएं जाएंगे, तो जड़ मंडल में अतिरिक्त नमक इकट्ठा नहीं होता:

- जिस वर्ष सामान्य से कम वर्षा हो (400 मि.मी. से कम) उस वर्ष अगली फसल की बुआई से पहले खारे पानी से भारी सिंचाई करें, ताकि लवण जड़ मंडल से नीचे चले जाएं।
- जहां बहाव या फ्लडिंग विधि से सिंचाई करनी हो, वहां जमीन को समतल रखें, जिससे कम पानी में अच्छी सिंचाई हो सके।
- जहां तक हो सके सूखे खेत में बीजाई करें एवं इसके बाद सिंचाई करें। अंकुरण एवं पौधों को अच्छी तरह

अन्य सस्य क्रियाएं

- खेत में गोबर की सड़ी खाद, कम्पोस्ट आदि का भरपूर प्रयोग करें।
- पौधे से पौधे एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी कुछ कम कर दें एवं बीज की मात्रा भी 20-25 प्रतिशत बढ़ा देनी चाहिए।
- फसलों में निराई-गुड़ाई करते रहना चाहिए।
- अगर हो सके, तो जमीन की सतह पर मल्च का प्रयोग करें। ऐसा करने से पानी का वाष्पीकरण कम हो जायेगा और मृदा की सतह पर लवण इकट्ठे नहीं होंगे।
- लवणीय पानी में गोबर की खाद का प्रयोग करके मृदा सरंचना को ठीक रखा जा सकता है।
- क्षारीय पानी का प्रयोग जिप्सम के प्रयोग के साथ किया जा सकता है।
- खारे पानी में नाइट्रेट की मात्रा अधिक होने के कारण नाइट्रोजन का प्रयोग कम किया जा सकता है।

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, करनाल; [2]मृदा विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जमने तक ऊपरी सतह पर पर्याप्त मात्रा में नमी बनाए रखें।

- नाली विधि से सिंचाई हेतु डोल पूर्व से पश्चिम दिशा में बनानी चाहिए एवं बीज या पौधे उत्तर दिशा में लगाने चाहिए। यह विधि उस समय अपनाएं, जब सभी नालियों में पानी जाने लगे।
- फसलों में खारे पानी की टपक विधि से सिंचाई करने से फसल पर लवणों का असर कम होता है।
- लवणीय-क्षारीय पानी का फुहारा विधि से सिंचाई करने पर पत्तियों पर दुष्प्रभाव होता है। इस दुष्प्रभाव को कम करने के लिए फुहारे से रात को सिंचाई करें।

मिश्रित जल का उपयोग

यदि एक ही स्थान पर मीठा एवं खारा पानी उपलब्ध हो, तो इन्हें मिलाकर प्रयोग करें तथा इस अनुपात में मिलाएं कि मिश्रित पानी की विद्युत चालकता निश्चित सीमा से अधिक न हो। इस पानी को चक्रीय विधि से खेत में मीठा एवं खारा पानी बारी-बारी से भी दिया जा सकता है। मीठे पानी को फसलों की बढ़वार की प्रारंभिक अवस्थाओं (बीज का अंकुरण एवं कल्ले फूटना आदि) में दिया जाए एवं बाद की अवस्थाओं में अगर खारा पानी भी दिया जाता है, तो फसल उत्पादन में अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा।

फसलों का चयन

कम पानी चाहने वाली तथा लवण एवं क्षार सहिष्णु फसलों की उन्नत किस्में लगाएं।

जिप्सम का उपयोग

क्षारीय पानी की क्षारीयता कम करने के लिए जिप्सम के बेड बनाकर पानी को उस पर से गुजरने दें या पानी की नालियों में जिप्सम के कट्टे रखें। इससे थोड़ा-थोड़ा जिप्सम पानी में घुलता रहेगा एवं पानी की गुणवत्ता में सुधार होगा। अन्यथा पानी की क्षारीयता की मात्रा के अनुसार ही जमीन में जिप्सम डालें।

सिंचाई जल की सामान्य समस्याओं का निदान

यदि पानी में घुलनशील लवणों की मात्रा (विद्युत चालकता) अधिक हो:

- ऐसे जल को हल्की-हल्की सिंचाई के रूप में प्रयोग करें।
- यदि अधिक मात्रा में लवण हों, तब इस जल का प्रयोग न करें।
- यदि कैल्शियम-मैग्नीशियम की प्रचुर मात्रा जल में हो, तो कुछ हद तक रेतीली दोमट मृदा में प्रयोग कर सकते हैं।
- यदि अन्य कोई अच्छी गुणवत्ता वाला सिंचाई जल उपलब्ध हो, तो दोनों को मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

यदि शेष सोडियम कार्बोनेट की मात्रा ज्यादा हो:

- ऐसे जल का प्रयोग या तो करना ही नहीं चाहिए या खेत में जिप्सम का प्रयोग साथ-साथ करना चाहिए।
- यदि क्षारीय मृदा के लिए ऐसे जल का प्रयोग हो तो जिप्सम की कुछ अधिक मात्रा देनी चाहिए।

यदि सोडियम अधिशोषण अनुपात अधिक हो:

- यदि लवणीयता के साथ-साथ सोडियम अधिशोषण अनुपात अधिक हो, तो ऐसे जल का प्रयोग किसी अन्य अच्छी गुणवत्ता वाले जल के साथ मिलाकर करना चाहिए।

यदि सभी समस्याएं एक साथ हों:

- यदि उपरोक्त तीनों समस्याएं एक साथ हों, तो वैज्ञानिक परामर्श लेना चाहिए। ■

सारणी: विद्युत चालकता के आधार पर पानी का वर्गीकरण

विद्युत चालकता (dS/m)	पानी की गुणवत्ता	उपयुक्त फसलें
1.5 से कम	साफ, अच्छी गुणवत्ता	सभी फसलें
1.5-3.0	हल्का लवणीय, अच्छा	चावल, गेहूं, ज्वार, मक्का,आलू, प्याज, इत्यादि
3.0-10.0	खारा, मध्यम, लवणीय	गेहूं, गाजर, मटर, मक्का इत्यादि
5.0-10.0	लवणीय, खराब, कम गुणवत्ता	जौ, चुकंदर, कपास, बेर, गन्ना, पालक इत्यादि
10.00-15.00	अधिक लवणीय, बहुत खराब	कोई फसल नहीं

अत: पानी की गुणवत्ता के आधार पर उपयुक्त फसलों का चयन करके अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

परीक्षण हेतु प्लास्टिक बोतलों में संग्रहीत सिंचाई जल

सिंचाई जल का नमूना लेने की विधि

- ट्यूबवेल को कम से कम 2-3 घंटे चलाने के बाद आधा लीटर पानी का नमूना लेना चाहिए।
- पानी के सैंपल को साफ गिलास या प्लास्टिक की बोतल में इकट्ठा करें।
- बोतल को उसी पानी से अच्छी तरह से 3-4 बार धो लें।
- बोतल के ऊपर अपना नाम, पूरा पता, नमूने की पहचान एवं कोई समस्या अगर हो, तो साफ-साफ लिखें।
- बोतल को अच्छी तरह से बंद कर उसे जल्द से जल्द प्रयोगशाला में भेजें और पानी की रिपोर्ट के आधार पर फसलों का चयन करें।
- किसान, पानी का परीक्षण चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय की मृदा एवं जल परीक्षण प्रयोगशालाओं में करवा सकते हैं।
- नलकूप (ट्यूबवेल) के पानी की जांच वर्ष में 2 बार (रबी और खरीफ) में अवश्य करवाएं।

सुझाव

- किसी भी दवा वाली बोतल में पानी का नमूना न लें।
- बोतल को धोने के लिए साबुन या डिटर्जेंट का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- बोतल शीशे या प्लास्टिक की हो, किसी धातु की न हो।
- मीठा पानी भी जमीन तथा फसलों के लिए हानिकारक हो सकता है। अत: प्रत्येक बोर की जांच करवाकर तथा सिफारिश पर ही जल का प्रयोग करना चाहिए।

पुनर्योजी कृषि के लिए मशीनीकरण

राहुल गौतम, **चेतन सावंत**, **विजय कुमार**, **अभिजीत खड़तकर** और **अजित मगर**

पुनर्योजी कृषि एक ऐसी टिकाऊ कृषि पद्धति है, जो मृदा की उर्वरता, जल संरक्षण और जैव विविधता को बढ़ावा देती है। इसका उद्देश्य केवल फसल उत्पादन ही नहीं, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र का पुनर्निर्माण और कार्बन उत्सर्जन को कम करना है। इसमें आवरण फसलों, फसल चक्रीकरण, कंपोस्टिंग और न्यूनतम जुताई जैसी तकनीकों का उपयोग होता है। यह कृषि पद्धति रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटाकर मृदा और पर्यावरण की रक्षा करती है। जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायक यह प्रणाली, किसानों के लिए दीर्घकालिक लाभ और स्थायित्व सुनिश्चित करती है। पुनर्योजी कृषि प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करते हुए कृषि उत्पादन को बढ़ाने की एक उन्नत पद्धति है। इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए मशीनीकरण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। मशीनीकरण से न केवल श्रम की बचत होती है, बल्कि मृदा की गुणवत्ता बनाए रखने, जल का कुशल उपयोग करने और कार्बन उत्सर्जन को घटाने में भी यह सहायक है।

पुनर्योजी कृषि में मशीनीकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह जैविक खाद, कम्पोस्ट और जैविक कीट नियंत्रण के कुशल उपयोग को सक्षम बनाता है। इससे रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है और उत्पादन लागत घटती है।

भारत में सरकारी सब्सिडी ने किसानों को मशीनी उपकरण अपनाने में मदद की है, जिससे पुनर्योजी प्रथाएं अधिक सुलभ और व्यावहारिक बन पाई हैं। यह दृष्टिकोण बहु-फसली प्रणालियों को बढ़ावा देता है, जो पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यक्षमताओं में सुधार करते हुए जैव विविधता को संरक्षित करता है। इसके उपायों में जुताई रहित, फसलचक्र, आवरण फसलें और पशु खाद प्रबंधन शामिल हैं।

भाकृअनुप-केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल

मशीनीकरण श्रम आवश्यकताओं को 70 प्रतिशत तक कम कर, जल उपयोग में 30-50 प्रतिशत कमी और मृदा के क्षरण को 50-80 प्रतिशत तक कम करता है। इसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में 10-15 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। यह टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल कृषि को संभव बनाता है।

संरक्षण कृषि

यह पुनर्योजी कृषि का एक महत्वपूर्ण आधार है, जो टिकाऊ कृषि तकनीकों पर जोर देता है। इसका उद्देश्य मृदा के स्वास्थ्य को सुधारना, जल उपयोग दक्षता बढ़ाना, पर्यावरणीय क्षरण को कम करना, और दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता सुनिश्चित करना है।

संरक्षण कृषि के सिद्धांत

- संरक्षण जुताई/न्यूनतम जुताई/शून्य जुताई/कम जुताई
- फसल अवशेष संरक्षण
- फसल चक्रीय प्रणाली

मृदा के स्वास्थ्य में वृद्धि

संरक्षण कृषि कम जुताई को प्राथमिकता देती है, जिससे मृदा की संरचना संरक्षित रहती है, कटाव कम होता है। सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को बढ़ावा मिलता है। मशीनीकरण इन प्रथाओं को प्रभावी ढंग से लागू करने में सहायता करता है। इससे दीर्घकालिक मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि और जैविक कार्बन भंडारण सुनिश्चित होता है।

जल संरक्षण

मल्चिंग या फसल अवशेषों के माध्यम से मृदा का आवरण बनाए रखने से जल वाष्पीकरण कम होता है और जल रिसाव में सुधार होता है। अवशेष प्रबंधन के लिए मशीनी उपकरण जैसे मल्चर्स और हैप्पी सीडर्स फसल अवशेषों को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करते हैं, जिससे मृदा में नमी बनी रहती है और सतही बहाव को रोका जाता है।

जलवायु अनुकूलन

संरक्षण कृषि कार्बन को संग्रहीत करके, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करके और कृषि प्रणालियों की अनुकूलन क्षमता बढ़ाकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करती है।

टर्बो हैप्पी सीडर

टर्बो हैप्पी सीडर मूल हैप्पी सीडर का उन्नत संस्करण है। यह भारी पुआल की स्थिति में भी कम ऊर्जा की मांग के साथ प्रभावी ढंग से कार्य करता है। टर्बो हैप्पी सीडर में पुआल की कटाई और टुकड़े करने का कार्य इनवर्टेड 'γ'-टाइप फ्लेल्स द्वारा किया जाता है, जो पुआल प्रबंधन ड्रम के अंदर एक रोटर (1000-1300 आरपीएम घूमता हैं) पर लगे होते हैं।

मशीनीकरण और पुनर्योजी कृषि

मशीनीकरण पर्यावरण और संसाधन संरक्षण को बढ़ावा देता है, जो पुनर्योजी कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। मशीनों द्वारा फसल अवशेष प्रबंधन पराली जलाने की आवश्यकता को 60 प्रतिशत तक कम कर वायु गुणवत्ता और मृदा के स्वास्थ्य में सुधार करता है। यह ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करके जलवायु परिवर्तन को रोकने में भी योगदान देता है। जीपीएस-निर्देशित ट्रैक्टर और ड्रोन जैसी मशीनी सटीक कृषि तकनीकें उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित करती हैं, जिससे संसाधन अपव्यय और प्रदूषण कम होता है। श्रम लागत में 70 प्रतिशत तक की कमी और ईंधन की खपत में 40-60 प्रतिशत की कटौती जैसे लाभ मशीनीकरण को अधिक किफायती बनाते हैं। ड्रिप सिंचाई जैसे उपाय पानी के उपयोग को 30-50 प्रतिशत तक कम करते हैं। संरक्षण कृषि मृदा का क्षरण 50-80 प्रतिशत घटाती है और समय के साथ उपज में 10-15 प्रतिशत की वृद्धि सुनिश्चित करती है, जिससे टिकाऊ और आर्थिक कृषि संभव होती है।

जैव विविधता में वृद्धि

संरक्षण कृषि के तहत विविध फसलचक्रीय प्रणाली और आवरण फसलों का उपयोग परागणकर्ताओं, मृदा के सूक्ष्मजीवों और लाभकारी कीटों सहित विभिन्न प्रकार के जीवों को समर्थन देता है। मशीनीकरण बहुफसली रोपण और कटाई को सुगम बनाता है, जैव विविधता-अनुकूल प्रथाओं को बड़े पैमाने पर अपनाने में मदद करता है।

आर्थिक व्यावहारिकता

संरक्षण कृषि जुताई की गतिविधियों को कम करके, रसायनों पर निर्भरता घटाकर, और जल एवं पोषक तत्वों के उपयोग का अनुकूलन करके आदान लागत को कम करती है। मशीनी संरक्षण कृषि उपकरण श्रम और ईंधन आवश्यकताओं को कम करके लागत-प्रभावी खेती को सुनिश्चित करते हैं।

संरक्षण जुताई/न्यूनतम जुताई

संरक्षण जुताई से मृदा की जलधारण क्षमता में 30 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। पुनर्योजी कृषि में मशीनीकरण, जैसे ड्रिप और स्प्रिंक्लर सिंचाई, जल अपव्यय 90 प्रतिशत तक कम करता है। बिना जुताई और अवशेष संरक्षण से जल उत्पादकता में 20-40 प्रतिशत वृद्धि संभव है, जो जल संकटग्रस्त क्षेत्रों में उपयोगी है।

नो-टिल सीडर्स

मशीनी नो-टिल सीडर्स और प्लांटर्स अवशेषों में बिना जुताई के सटीक बीजारोपण करते हैं, जिससे मृदा की संरचना सुधरती है और जैविक पदार्थ संरक्षित रहता है। शून्य जुताई में इनवर्टेड टी-ओपनर्स युक्त जीरो-टिल सीड ड्रिल्स का उपयोग होता है, जो पारंपरिक जुताई की तुलना में अधिक कुशल है।

नो-टिल सीडर्स

हैप्पी सीडर

धान के पुआल को गेहूं बुआई के समय से पहले काटता है। इसे बुआई वाले क्षेत्र में समान रूप से फैला देता है। यह अवशेष प्रबंधन और सीधी बीज बुआई को सरल बनाता है।

हैप्पी सीडर

अवशेष प्रबंधन

मशीनी उपकरण, जैसे हैप्पी सीडर और रोटावेटर, फसल अवशेषों को मृदा में शामिल कर वायु प्रदूषण कम करके और जैविक पदार्थ बढ़ाते हैं। जीरो-टिल सीडर्स और स्ट्रिप टिलर्स मृदा की संरचना को संरक्षित रखते हैं। मल्चर्स और स्ट्रॉ चॉपर्स मृदा की नमी बनाए रखते हुए वाष्पीकरण को कम करते हैं।

इन-सीटू पुआल प्रबंधन मशीनरी

मल्चर

यह फसल अवशेषों को काटकर खेत में समान रूप से फैलाता है। यह मृदा की जल स्थिति को सुधारता है और मृदा में

मल्चर

तापमान को नियंत्रित करता है। इससे जड़ वृद्धि, पौधे की छांव, फसल उपज और जल उत्पादकता में वृद्धि होती है। फसल अवशेषों को मृदा में बनाए रखने से मृदा का घनत्व कम होता है।

सुपर सीडर

यह एक ही बार में मल्चिंग और बीज बोने का कार्य करता है। सुपर सीडर एक ट्रैक्टर माउंटेड मशीन है जो धान के पुआल को

सुपर सीडर

धान पुआल चॉपर

धान के अवशेषों को छोटे टुकड़ों में काटने वाली ट्रैक्टर-चालित मशीन इन्हें खेत में समान रूप से फैलाती है। कटे हुए अवशेष पारंपरिक उपकरणों, जैसे डिस्क हैरो और रोटावेटर से न्यूनतम प्रयास में मृदा में मिलाए जा सकते हैं, जिससे मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है।

काटकर उठाती है, गेहूं को मृदा में बोती है, और पुआल को बुआई वाले क्षेत्र में मल्च के रूप में फैला देती है। यह तकनीक पर्यावरण के लिए लाभकारी है, क्योंकि यह मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखती है और जल की बचत भी करती है।

राउंड और स्क्वायर बेलर

बेलर एक मशीन है, जिसका उपयोग पुआल को बेलों में संकुचित करने के लिए

राउंड बेलर

किया जाता है, ताकि इसका आसानी से परिवहन और भंडारण किया जा सके।

पुआल रिपर/लोडर

पुआल रिपर एक चॉपर मशीन है, जो पुआल को एक ही प्रक्रिया में काटती है, थ्रेस करती है और साफ करती है। कम्बाइन हार्वेस्टर के बाद बचने वाले गेहूं के तने को एक ऑस्सीलेटिंग ब्लेड्स द्वारा काटा जाता है, जबकि घूमता हुआ रील उन्हें वापस की ओर धक्का देता

स्क्वायर बेलर

है और आगे की तरफ ले जाता है। तने को ऑगर और गाइड ड्रम द्वारा मशीन में भेजा जाता है, जो थ्रेसिंग सिलेंडर तक पहुंचता है।

चिपर्स/श्रेडर्स

श्रेडिंग मशीन एक उपकरण है, जिसे

चिपर्स/श्रेडर्स

सामग्रियों को छोटे टुकड़ों में काटने या फाड़ने के लिए डिजाइन किया गया है।

सतत कृषि हेतु प्राकृतिक खेती

सरोज चौधरी, प्रीती वर्मा, नरेश कुमार अग्रवाल, बंशीधर और **धीरज कुमार**

"प्राकृतिक खेती एक ऐसी कृषि पद्धति है, जो बिना रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के, पूरी तरह देसी एवं प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित होती है। यह पद्धति न केवल मृदा की उर्वरता और जीवंतता को बनाए रखती है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और मानव स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी है। देसी गाय से प्राप्त जीवामृत, बीजामृत और घनजीवामृत इसके प्रमुख घटक हैं। प्राकृतिक खेती उत्पादन लागत को घटाकर कृषकों की आय में वृद्धि करती है तथा सतत कृषि विकास को प्रोत्साहित करती है। हरित क्रांति के दौरान रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा विभिन्न नई कृषि तकनीकों को अपनाकर फसल उत्पादन में भारी वृद्धि हुई, जिससे किसान आत्मनिर्भर बन सके। समय के साथ-साथ इसके दुष्प्रभाव भी दिखने लगे। अधिक मात्रा में उर्वरकों और रसायनों के उपयोग से मृदा की उर्वर क्षमता कम होने लगी तथा पर्यावरण प्रदूषण भी बढ़ने लगा। ऐसे में ऐसी कृषि प्रणाली की आवश्यकता है, जो कृषि उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ कृषि लागत को भी कम कर सके। साथ ही वह प्रणाली मृदा स्वास्थ्य और पर्यावरण के अनुकूल हो। ऐसे में प्राकृतिक खेती इसका एक टिकाऊ और बेहतरीन विकल्प है।"

प्राकृतिक खेती, कृषि की एक ऐसी प्रणाली है जो रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को पूरी तरह से नकारती है। यह कृषि की एक प्राचीन भारतीय पद्धति है, जिसे आधुनिक पारिस्थितिकी, संसाधन पुनर्चक्रण और खेत पर उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलन के सिद्धांतों के साथ समृद्ध किया गया है।

प्राकृतिक खेती को कृषि पारिस्थितिकी आधारित एक विविध कृषि प्रणाली के रूप में देखा जाता है, जो फसलों, वृक्षों और पशुधन

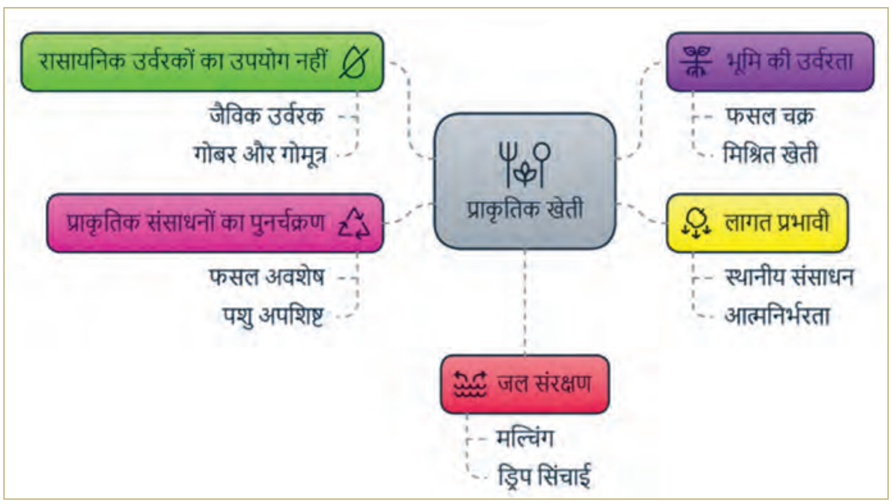

प्राकृतिक खेती की विशेषताएं

कृषि विज्ञान केंद्र, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022 (राजस्थान)

को कार्यात्मक जैव विविधता के साथ एकीकृत करती है। इस प्रणाली का मुख्य आधार खेत पर उपलब्ध बायोमास का पुनर्चक्रण है, जिसमें बायोमास मल्चिंग, खेत पर देसी गाय के गोबर और मूत्र से बने उत्पादों का उपयोग किया जाता है।

गैर रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों रहित खेती

प्राकृतिक खेती का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें किसी भी प्रकार के रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता है। क्योंकि इन रसायनों के प्रयोग से मृदा की जैविक संरचना प्रभावित होती है। इससे मृदा में लाभदायक जीवाणुओं और सूक्ष्मजीवों की संख्या घट जाती है। प्राकृतिक खेती में गोबर, गोमूत्र, हरी खाद, वर्मीकम्पोस्ट और जीवामृत जैसे जैविक उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। इससे मृदा की गुणवत्ता बनी रहती है और फसल उपज भी स्वस्थ होती है।

मृदा की उर्वरता और जैव विविधता में वृद्धि

प्राकृतिक खेती में जैविक खाद और पारंपरिक कृषि विधियों के माध्यम से मृदा की संरचना और उसमें पोषक तत्वों की उपलब्धता बनाए रखी जाती है। फसलचक्र और मिश्रित खेती जैसी तकनीकों का उपयोग करके मृदा की उर्वरता को बढ़ाया जाता है तथा मित्र कीटों और लाभकारी जीवों को एक अनुकूल वातावरण मिलता है। भूमि में जीवाणुओं और केंचुओं की संख्या बढ़ने से मृदा अधिक उपजाऊ होती है और जलधारण क्षमता में भी सुधार होता है।

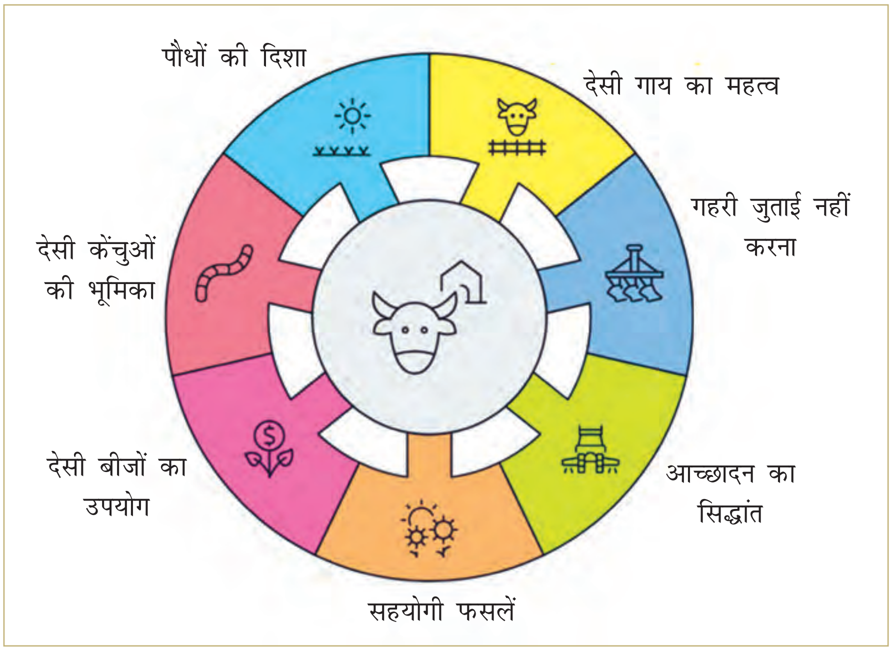

प्राकृतिक खेती के सिद्धांत

प्राकृतिक खेती के लाभ

मृदा की उर्वरता में सुधार: मृदा की उर्वरता किसी भी कृषि प्रणाली की सफलता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। प्राकृतिक खेती के अंतर्गत जैविक खाद, गोबर, हरी खाद, वर्मीकम्पोस्ट और जीवाणु संवर्धन का उपयोग किया जाता है। यह मृदा में जैविक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाता है, जिससे मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है।

पर्यावरण संरक्षण: रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अधिक उपयोग से भूमि, जल और वायु प्रदूषित होते हैं। प्राकृतिक खेती इन समस्याओं को हल करने में सहायक होती है।

उत्पादन लागत में कमी: प्राकृतिक खेती में बाहरी इनपुट (जैसे उर्वरक और कीटनाशक) पर निर्भरता कम होती है, गोबर, वर्मीम्पोस्ट, हरी खाद, जीवामृत और जैविक कीटनाशक जैसे घटक किसानों के पास उपलब्ध होते हैं और इनका उपयोग करने से लागत कम होती है।

किसानों की आय में वृद्धि: प्राकृतिक खेती अपनाने से किसानों की उत्पादन लागत घटती है और उनकी उपज की बाजार में अच्छी कीमत मिलती है।

स्वास्थ्यवर्धक खाद्य उत्पादन: प्राकृतिक खेती से उत्पादित खाद्य पदार्थों में रासायनिक अवशेष नहीं होते, जिससे वे स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभकारी होते हैं।

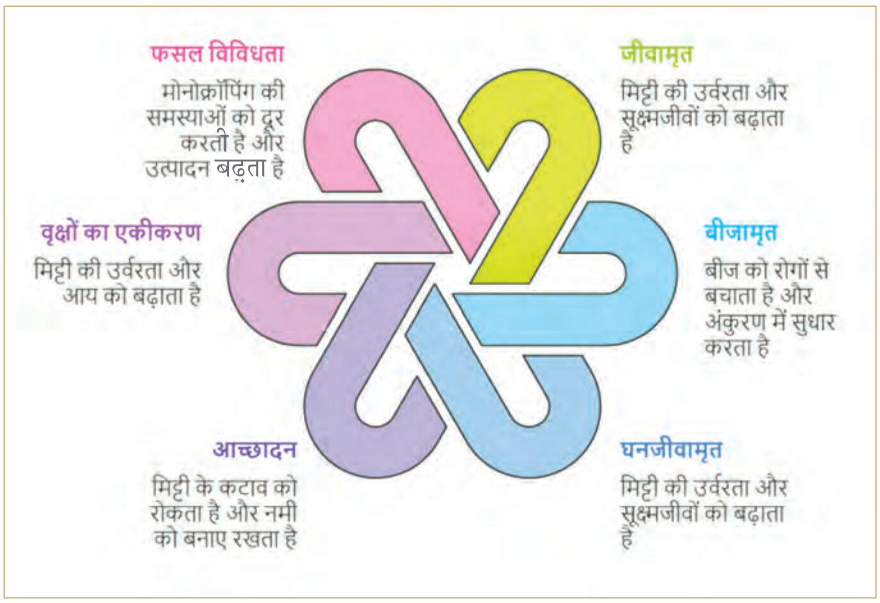

प्राकृतिक खेती के मुख्य घटक

लागत प्रभावी

रासायनिक खेती में किसान उर्वरकों, कीटनाशकों और अन्य कृषि आदानों पर भारी खर्च करते हैं, जबकि प्राकृतिक खेती में बाहरी कृषि आदानों पर निर्भरता कम होती है। इसके साथ ही किसान स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके खेती कर सकते हैं। यह प्रणाली किसानों को आत्मनिर्भर बनने की दिशा में प्रेरित करती है और उन्हें बाजार में उपलब्ध महंगे रासायनिक उत्पादों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता।

प्राकृतिक संसाधनों का पुनर्चक्रण

इसमें फसल अवशेषों, पशु अपशिष्टों और जैविक अपशिष्ट को पुन: उपयोग में लाकर खाद और उर्वरकों के रूप में परिवर्तित किया जाता है। यह प्रक्रिया न

उपयोगी

प्राकृतिक खेती एक टिकाऊ, पर्यावरण-अनुकूल और लाभकारी कृषि पद्धति है, जो किसानों, उपभोक्ताओं और पर्यावरण के लिए फायदेमंद है। हालांकि, इसे अपनाने में कई चुनौतियां भी हैं, जिनका समाधान सरकार, वैज्ञानिकों और किसानों के सामूहिक प्रयास से संभव है। सरकारी प्रोत्साहन, प्रशिक्षण कार्यक्रम, जागरूकता अभियानों और बाजार संरचना में सुधार करके प्राकृतिक खेती को व्यापक रूप से अपनाया जा सकता है। यह न केवल खाद्य सुरक्षा और पोषण में सुधार करेगी, बल्कि जलवायु परिवर्तन से निपटने और मृदा की गुणवत्ता बनाए रखने में भी मदद करेगी।

बेर की प्राकृतिक खेती से बढ़ती आमदनी और खुशहाल किसान

केवल मृदा की गुणवत्ता को बनाए रखती है, बल्कि कृषि में कचरे की मात्रा को भी कम करती है।

जल संरक्षण और पर्यावरणीय लाभ

प्राकृतिक खेती में मल्चिंग, ड्रिप सिंचाई और वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकों का उपयोग करके जल की बचत की जाती है।

देसी गाय का महत्व

प्राकृतिक खेती मुख्य रूप से देसी गाय पर आधारित है। देसी गाय के एक ग्राम गोबर में कई लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु होते हैं जो मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। देसी गाय के गोबर और गोमूत्र की महक से केंचुएं भूमि की सतह पर आकर भूमि को उपजाऊ बनाते हैं।

गहरी जुताई का उपयोग नहीं

प्राकृतिक कृषि में गहरी जुताई नहीं की जाती है। इससे भूमि में उपलब्ध प्रूमस निर्माण की प्रक्रिया रुक जाती है तथा उपजाऊ क्षमता कम हो जाती है।

कृषि विज्ञान केंद्र, टोंक द्वारा किसान के खेत पर स्थापित प्राकृतिक खेती के उपयोगी अवयव

आच्छादन

सजीव आच्छादन में परती भूमि पर हरी खाद वाली फसलें उगाई जाती हैं, तथा निर्जीव आच्छादन में सूखी पत्तियां, फसल अवशेष या भूसा बिछाकर मृदा को ढका जाता है। इसका उद्देश्य मृदा में नमी और उर्वराशक्ति को बनाए रखना है।

सहयोगी फसलें

इसके अंतर्गत मुख्य फसल के साथ ऐसी सहयोगी फसलें लगायी जाती हैं जिससे मुख्य फसल को पोषक तत्व मिलते रहें तथा कीट नियंत्रण भी होता रहे।

देसी बीजों का उपयोग

देसी बीज मृदा में कम पोषक तत्व लेकर अधिक उत्पादन देते हैं। इसके अतिरिक्त ये बीज जलवायु के प्रति अधिक अनुकूल होते हैं।

देसी केंचुओं की भूमिका

केंचुएं भूमि में ऊपर-नीचे आवागमन करते हैं जिससे भूमि में छोटे-छोटे छिद्र बन जाते हैं। ये छिद्र भूमि में वायु संचार एवं जल धारण क्षमता को बढ़ाते हैं साथ ही केंचुएं अपनी विष्टा से भूमि की सतह को पोषक तत्वों से समृद्ध बनाते हैं।

पौधों की दिशा

प्राकृतिक कृषि में पौधों की दिशा उत्तर-दक्षिण होती है। इससे पौधों को सूर्य का प्रकाश अधिक समय तक समुचित रूप से मिलता है जिस कारण पौधों पर कीट प्रकोप भी कम होता है।

जीवामृतः मृदा के सूक्ष्मजीवों को सक्रिय करने के लिए

जीवामृत प्राकृतिक खेती का एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसका उपयोग मृदा की जैविक उर्वरता को बढ़ाने और उसमें उपयोगी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाने के लिए किया जाता है। यह एक जैविक घोल है, जिसे गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन और मृदा को मिलाकर तैयार किया जाता है।

जीवामृत बनाने की विधि

- 10 कि.ग्रा. देसी गाय का ताजा गोबर
- 10 लीटर देसी गाय का ताजा मूत्र
- 2 कि.ग्रा. गुड़ (देसी)
- 2 कि.ग्रा. बेसन या दाल का आटा
- 1 कि.ग्रा. बरगद/पीपल पेड़ की मृदा
- 200 लीटर पानी

इन सभी तत्वों को प्लास्टिक के ड्रम में मिलाकर घोल तैयार किया जाता है और 2-3 दिनों तक किण्वन के लिए छाया में रखा जाता है, दिन में दो बार सुई की दिशा में लकड़ी के डंडे से 2 मिनट तक हिलाया जाता है तथा बोरी से ढक दिया जाता है।

बीजामृतः बीज उपचार के लिए

बीजामृत का उपयोग बीज उपचार हेतु किया जाता है जो बीज को रोगों से बचाने और अंकुरण क्षमता बढ़ाने के लिए किया जाता है।

बीजामृत बनाने की विधि

- 5 लीटर देसी गाय का गोमूत्र
- 5 कि.ग्रा. देसी गाय का गोबर
- 250 ग्राम चूना
- मुट्ठी भर खेत की मृदा
- 20 लीटर पानी

इन सभी पदार्थों को मिलाकर घोल तैयार किया जाता है तथा दिन में 2 बार लकड़ी से घोल को हिलाते हैं। इसके बाद बीजों के ऊपर बीजामृत डालकर उसे छाया में सुखाकर बुआई करते हैं।

घनजीवामृतः जैविक उर्वरक के रूप में

घनजीवामृत एक जैविक उर्वरक है जिसका उपयोग प्राकृतिक खेती में मृदा उर्वरता और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाने के लिया किया जाता है।

कृषि विज्ञान केंद्र, टोंक द्वारा किसानों को प्राकृतिक खेती पर प्रशिक्षण देते हुए

घनजीवामृत बनाने की विधि

- 100 कि.ग्रा. देसी गाय का गोबर
- 1 कि.ग्रा. गुड़
- 2 कि.ग्रा. दलहन आटा
- एक मुट्ठी खेत की मृदा
- 5-10 लीटर देसी गाय का गोमूत्र

देसी गाय के गोबर की पतली परत छाया में बिछाकर इसके ऊपर गुड़, दाल का आटा, मृदा एवं देसी गाय का गोमूत्र मिलाते हैं और दो दिनों तक छाया में सूखने देते हैं। इसके बाद इस मिश्रण को खेत में डालते हैं।

आच्छादनः जैविक पदार्थों से मृदा को ढकना

आच्छादन का अर्थ है मृदा की सतह को जैविक पदार्थों जैसे फसल अवशेष, पत्तियां, घास या भूसे से ढक देना। यह विधि मृदा के कटाव को रोकती है और नमी को बनाए रखती है। इसमें सजीव आच्छादन (हरी खाद) तथा निर्जीव आच्छादन (पत्तियां, भूसा) दोनों का उपयोग किया जा सकता है।

वृक्षों का एकीकरणः खेत में पेड़ों को शामिल करना

वृक्षों और फसलों को एक साथ उगाने की विधि को वृक्ष-आधारित कृषि प्रणाली कहा जाता है। यह मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाने, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने और भूमि के कुशल उपयोग में सहायक होती है। साथ ही, यह किसानों को अतिरिक्त आय का स्रोत भी प्रदान करती है।

फसल विविधताः मिश्रित और सहफसली खेती

फसल विविधता का अर्थ है एक ही खेत में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाना, जिससे भूमि की उर्वरता बनी रहती है और कीट-रोगों का प्रकोप कम होता है। इसके तीन प्रमुख प्रकार हैं: मिश्रित खेती (एक साथ कई फसलें), सहफसली खेती (एक मौसम में कई फसलें) और फसलचक्र (हर मौसम में अलग फसलें)। यह विधि मोनोक्रॉपिंग की समस्याओं को दूर करती है और उत्पादन बढ़ाती है।

चुनौतियां

प्रारंभिक वर्षों में कम उत्पादन

मृदा की जैविक उर्वरता को पुनः स्थापित करने में कुछ समय लगता है तथा रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भर रहने के कारण प्रारंभ में प्राकृतिक खेती अपनाने वाले किसानों को उत्पादन में कमी का सामना करना पड़ सकता है।

बाजार की उपलब्धता और मूल्य निर्धारण

प्राकृतिक और जैविक उत्पादों के लिए एक संगठित बाजार की कमी के कारण बड़े शहरों में जैविक उत्पादों की अच्छी मांग के बावजूद भी किसान उचित मूल्य प्राप्त करने में कठिनाई महसूस करते हैं।

किसानों में जागरूकता की कमी

प्राकृतिक खेती की विधियों और उनके लाभों के बारे में कई किसानों को जानकारी नहीं होती तथा प्रशिक्षण और सरकारी सहायता की कमी के कारण किसान इसे अपनाने में हिचकिचाते हैं। ■

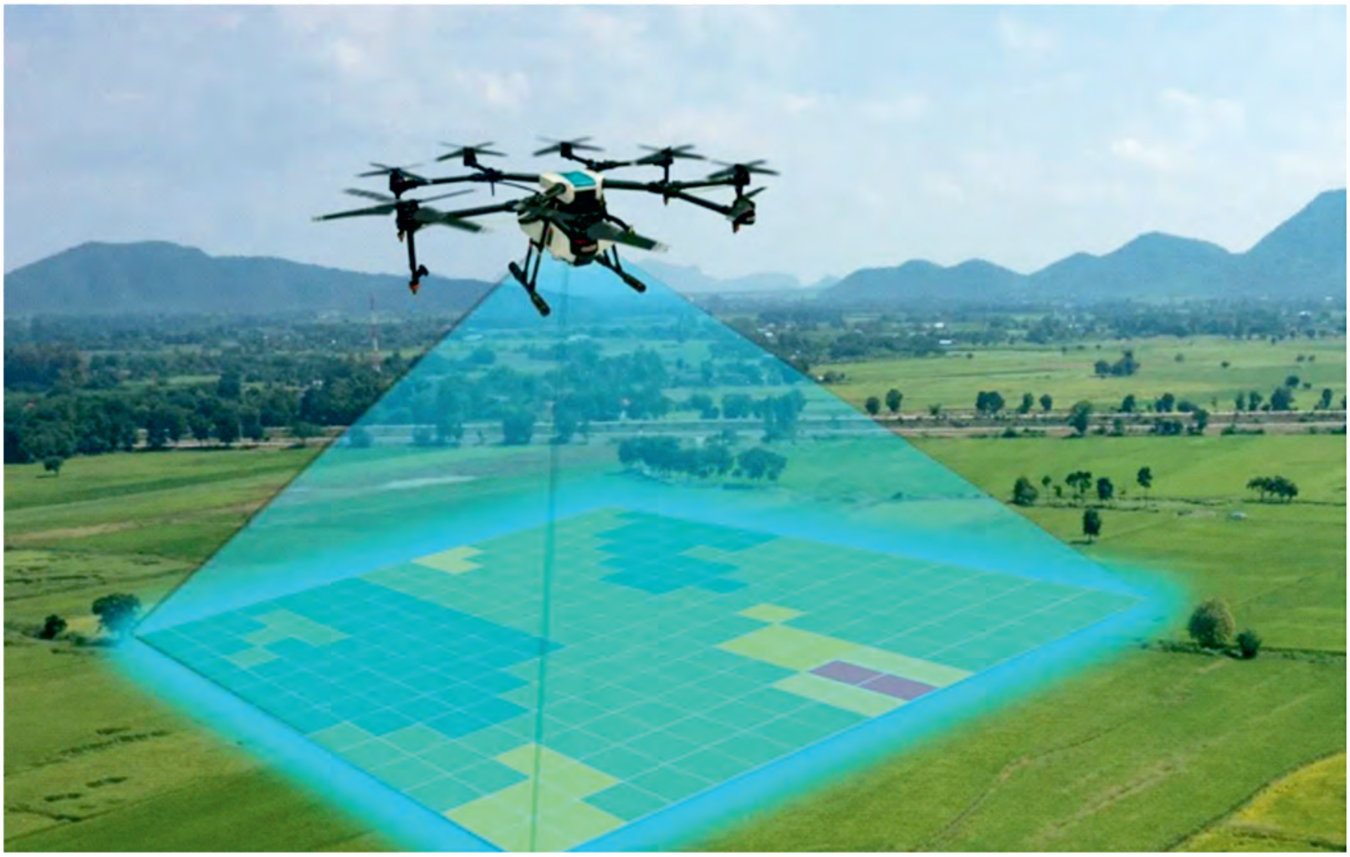

कृत्रिम बुद्धिमत्ता से कृषि में क्रांतिकारी परिवर्तन

शिंदे धीरज

बढ़ते वैश्विक तापमान (ग्लोबल वॉर्मिंग) के कारण वातावरण में बड़े पैमाने पर परिवर्तन हो रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि ऋतुओं में अचानक परिवर्तन हो रहा है। इसके साथ ही बढ़ती जनसंख्या, लगातार घटती हुई भूमि की उत्पादकता, फसलों पर आने वाले रोग, श्रमिकों की कमी और कृषि उत्पादों की बाजार में मिलने वाली कीमतें ये सभी चुनौतियां आज की स्थिति में कृषि को किसानों के लिए लाभदायक नहीं बनने दे रही हैं। भारत जैसे विकासशील देश, जहां विश्व की सबसे अधिक जनसंख्या है, जिसकी अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है। यहां बुआई से लेकर कटाई तक किसानों को अनेक प्रकार की कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं से निपटने के लिए आधुनिक समाधान के रूप में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) का प्रयोग एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उभर रहा है।

वैश्विक स्तर पर देखा जाए तो संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार, वर्ष 2023 में दुनियाभर में 259 मिलियन (25.9 करोड़) से अधिक लोग भुखमरी का शिकार हुए हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि इससे भी भयावह स्थिति वर्ष 2030 में हो सकती है, क्योंकि अनुमान है कि तब तक विश्व की जनसंख्या 8.5 अरब हो जाएगी और शताब्दी के अंत तक यह 10 अरब से भी अधिक हो सकती है। इतनी बड़ी जनसंख्या को आज की तकनीक और सीमित संसाधनों के माध्यम से खाद्य सामग्री उपलब्ध करवाना अत्यंत कठिन कार्य होगा।

कृषि क्षेत्र के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियां हैं, जैसे तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्यान्न की बढ़ती मांग, घटती उत्पादकता, सीमित जल संसाधन, सिंचाई की कमी, मृदा अपरदन, वैश्विक आर्थिक कारक, जलवायु परिवर्तन और अस्थिर बाजार मूल्य आदि।

उपरोक्त सभी समस्याओं के समाधान के लिए कृषि क्षेत्र में बड़े पैमाने पर आधुनिक और अद्यतन तकनीकों का विकास करना आवश्यक है। इसके साथ ही, ऐसी तकनीकों का निर्माण भी जरूरी है, जो विषमुक्त हों, कम खर्च में और सीमित संसाधनों के बावजूद अधिकतम उत्पादन देने में सक्षम हों। इसी संदर्भ में 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' अर्थात आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) तकनीक का प्रभावी उपयोग कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी बदलाव ला सकता है। इसमें मुख्य रूप से निम्न बातों का समावेश होता है:

आधुनिक यंत्रों द्वारा स्थानीय जानकारी का संकलन, विश्लेषण और उपयोग

फसल और मृदा की निगरानी आधुनिक कृषि में अत्यंत निर्णायक भूमिका निभाती है। इसलिए फसल और मृदा का निरंतर निरीक्षण आवश्यक होता है। इस प्रकार की जानकारी

वरिष्ठ वैज्ञानिक और प्रमुख, कृषि विज्ञान केंद्र, बारामती (महाराष्ट्र)

(डेटा) आधुनिक तकनीकों की मदद से जैसे उपग्रह, हाई-रिज़ॉल्यूशन फोटो कैप्चर करने वाले उपकरणों के माध्यम से आसानी से प्राप्त की जा सकती है। इन निगरानियों के माध्यम से प्राप्त जानकारियां किसानों को सटीक निर्णय लेने में मदद करती हैं। इसके अतिरिक्त, कैमरे से सुसज्जित ड्रोन, ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम तकनीक, सेंसर और इंटरनेट ऑफ थिंग्स जैसी तकनीकों द्वारा विस्तृत चित्र और डेटा कैप्चर किया जा सकता है।

मृदा में नमी मापने वाले सेंसर

भूमि की विभिन्न गहराइयों पर मृदा की नमी का स्तर माप सकते हैं। इससे किसान, फसल को आवश्यकतानुसार ही पानी दे सकते हैं। इससे जल का अपव्यय नहीं होता और भूमि का क्षरण भी रोका जा सकता है। कुछ सेंसरों की मदद से फसल के स्वास्थ्य, तनाव के संकेत, रोग, पोषक तत्वों की कमी, क्लोरोफिल की मात्रा और पत्तियों के तापमान जैसी महत्वपूर्ण जानकारियां भी प्राप्त की जा सकती हैं। इन जानकारियों के विश्लेषण से रोग और कीट प्रबंधन प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

मौसम का सटीक अनुमान

वेदर सैटेलाइट, मौसम केंद्र (वेदर स्टेशन) और वेबसाइट्स के माध्यम से किसी विशेष स्थान के लिए अद्यतन मौसम पूर्वानुमान प्राप्त किया जा सकता है। किसान इन साधनों का उपयोग करके दैनिक अवलोकन कर सकते हैं और तापमान, वर्षा, आर्द्रता, हवा की गति आदि के साथ साप्ताहिक मौसम की स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं। हालांकि, इस संदर्भ में सॉफ्टवेयर की सहायता से और भी सटीक भविष्यवाणियां की जा सकती हैं। खेतों में लगाए गए स्थानीय मौसम केंद्र किसी विशेष स्थान का तापमान, आर्द्रता, हवा की दिशा और वर्षा जैसी जानकारी मापते हैं।

कृषि क्षेत्र की प्रमुख समस्याएं

इसके साथ ही इनसे रियल टाइम डेटा उपलब्ध करवाया जा सकता है। यह जानकारी किसानों को समय पर निर्णय लेने, फसलों की सुरक्षा करने और उत्पादन बढ़ाने में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है।

उत्पादन का पूर्वानुमान

फसल उत्पादन का पूर्वानुमान लगाना कई कारकों पर निर्भर करता है, जैसे-मौसम की स्थिति, जल की मात्रा और स्तर तथा मृदा में मौजूद सूक्ष्म और अति-सूक्ष्म पोषक तत्व आदि। ये सभी तत्व फसल के स्वास्थ्य की निगरानी के लिए बेहद आवश्यक होते हैं। विभिन्न डेटा स्रोतों, मशीनों और उन्नत विश्लेषण विधियों का उपयोग कर एआई (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) की सहायता से पहले से ही उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है।

फसल कटाई की योजना

फसल की कटाई एक मेहनतभरा और चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। एआई का उपयोग कृषि में शारीरिक श्रम को कम करने के लिए किया जा सकता है। इसके माध्यम से एक साथ कई कार्य किए जा सकते हैं, जैसे कि यह जानना कि फसल कटाई के लिए तैयार है या नहीं, उसकी गुणवत्ता और मात्रा की पहचान। एआई की मदद से हस्तचालित मशीनों को स्वचालित बनाया जा सकता है, जिससे कटाई जैसे काम आसान हो जाते हैं।

उन्नत फसल किस्में और बीज उत्पादन

एआई का उपयोग करके नई और उन्नत फसल किस्मों के विकास को गति दी जा सकती है। इसमें जीनोमिक चयन, फेनोटाइपिंग और क्रॉस ब्रीडिंग की सिफारिशें आज के समय में अत्यंत लाभदायक साबित हो रही हैं।

प्रसंस्करण और पैकेजिंग

एआई और एमएल (मशीन लर्निंग) कटाई के बाद की प्रक्रिया और तकनीक में वरदान साबित हो रहे हैं। इससे शारीरिक श्रम कम होता है और खाद्य अनाज का सटीक वर्गीकरण किया जा सकता है। एआई और एमएल की मदद से उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों को आकार, वजन और रंग के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इससे अपशिष्ट में कमी आती है और गुणवत्ता की

कृषि रोबोट्स का उपयोग

कृषि रोबोट्स को सामान्यत: 'एग्रोबॉट्स' के नाम से जाना जाता है। इन रोबोट्स में उन्नत तकनीक होने के कारण ये स्वतंत्र रूप से या कम से कम मानवीय सहायता के साथ खेतों में कार्य कर सकते हैं, जैसे-बुआई करना, विशेष स्थान पर सटीक गहराई पर बीज डालना, उत्तम गुणवत्ता के बीजों का चयन करना, फसल की बढ़त के अनुसार अंतर और गहराई सुनिश्चित करना, फसल की कटाई करना, कटाई के बाद की प्रक्रिया और पैकेजिंग करना आदि। इसके अलावा, रोबोट्स में लगे सेंसर्स की सहायता से मृदा की स्थिति का विश्लेषण कर खाद की जरूरत के अनुसार केवल आवश्यक स्थानों पर ही खाद डाली जा सकती है, जिससे अतिरिक्त खाद के उपयोग से बचा जा सकता है। इससे खर्च में भी बचत होती है और भूमि की उर्वरता बनाए रखने में मदद मिलती है।

आधुनिक कृषि का बढ़ता महत्व

कृषि रोबोट द्वारा फसल प्रबंधन

रोबोट्स की मदद से भूमि में नमी, खनिज और अन्य मापदंडों की जानकारी एकत्र की जा सकती है। उसका विश्लेषण किया जा सकता है और उस आधार पर भूमि एवं फसल के अनुसार निर्णय लेकर खेती से संबंधित सभी कार्य स्वचालित रूप से किए जा सकते हैं। इसी अनुसार रोबोट्स की संरचना और प्रोग्रामिंग तैयार की जा सकती है।

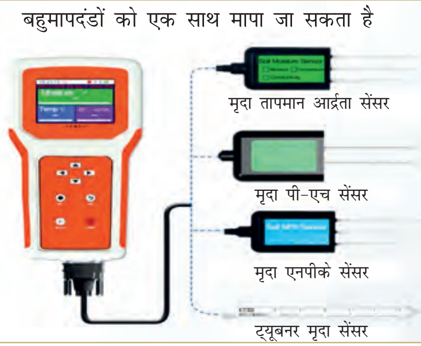

बहुमापदंडों से मुक्त

आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। ऑटोमेशन, एक्स-रे, स्कैनर, लेजर, कैमरे और रोबोट जैसी उन्नत तकनीकों के उपयोग से मानव श्रम में कमी आती है।

कृषि उत्पादों का भंडारण

फसल की निगरानी, सूची नियंत्रण, गुणवत्ता आश्वासन, लॉजिस्टिक्स सुधार, पूर्वानुमान आधारित रखरखाव, ऊर्जा प्रबंधन, ऑटोमेशन, सप्लाई चेन की पारदर्शिता, डेटा विश्लेषण, फसल संरक्षण, टिकाऊपन, बाजार विश्लेषण और मूल्य पूर्वानुमान जैसे क्षेत्रों में एआई तकनीक के सही उपयोग से किसानों को आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

एआई का मत्स्य उत्पादन में प्रयोग

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) मत्स्य उत्पादन में सबसे करगर साबित हो सकती है। आज की आधुनिक मछलीपालन प्रणाली को अधिक स्वचालित, किफायती और पर्यावरण के अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। एआई की सहायता से लगभग 95 प्रतिशत सटीकता के साथ कार्य किया जा सकता है। इससे मानव श्रम की आवश्यकता कम होती है और संसाधनों का अधिक प्रभावी उपयोग संभव होता है।

मछलीपालन में एआई का उपयोग विभिन्न रूपों में किया जा सकता है, जैसे कि आहार प्रबंधन के अंतर्गत मछलियों के व्यवहार के अनुसार उन्हें सही समय और मात्रा में चारा प्रदान करना, जिससे आहार का अपवयय और खर्च दोनों कम हो सकें। मछलियों के स्वास्थ्य निगरानी के माध्यम से एआई सेंसर और कैमरों की मदद से रोग या तनाव के लक्षणों की पहचान कर समय पर उपचार संभव बनाना, जिससे दवाइयों की आवश्यकता कम की जा सकती है।

सबसे महत्वपूर्ण पानी की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए एआई द्वारा तापमान, ऑक्सीजन, पी-एच मान आदि की सतत निगरानी की जा सकती है। इससे मछलियों के लिए अनुकूल वातावरण सुनिश्चित कर पानी में अचानक होने वाली मछली की मृत्यु से बचा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, एआई मछलियों की संख्या, आकार और वजन की निगरानी कर मत्स्य उत्पादन योजना को सरल बना सकता है। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भी एआई तकनीक उपग्रह चित्रों और भू-स्थानिक आंकड़ों का विश्लेषण कर फार्म की सही लोकेशन के चयन में मददगार हो सकती है, जिससे पारिस्थितिक नुकसान न्यूनतम होता है। रोबोटिक्स और ऑटोमेशन के क्षेत्र में एआई से नियंत्रित रोबोट और ड्रोन चारा देने, सफाई करने और निगरानी जैसे कार्य कुशलता से किये जा सकते हैं। अंततः, विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण द्वारा एआई तकनीक किसानों को सही समय पर सटीक निर्णय लेने में सहायता कर सकती है। इससे उत्पादन, लागत और पर्यावरणीय संतुलन के बीच बेहतर तालमेल बनाये जा सकते हैं।

भारत और विश्व में एआई

विकसित देशों में एआई तकनीक कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इससे कार्यक्षमता, उत्पादकता और स्थिरता में सुधार हो रहा है। इन देशों में सरकार और निजी संस्थाएं मिलकर किसानों के लिए काम कर रही हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का मत्स्य उत्पादन में प्रयोग

भारत में भी कुछ संस्थाएं जैसे कि एग्रीकल्चर डेवलपमेंट ट्रस्ट, बारामती और कृषि विज्ञान केंद्र, बारामती किसानों के साथ मिलकर गन्ने की फसल पर महत्वाकांक्षी योजना चला रही हैं। इस योजना में माइक्रोसॉफ्ट और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय सहभागी है। इस योजना की तारीफ एलन मस्क सीईओ, टेस्ला और सत्या नाडेला, सीईओ माइक्रोसॉफ्ट ने भी की है।

भारत में महाराष्ट्र राज्य में वर्ष 2025 में कृषि क्षेत्र में 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' के उपयोग के लिये योजना का ऐलान किया गया है। इस तरह से केंद्रीय सरकार और भाकृअनुप भी सक्रिय रूप से संशोधनों में और योजनाओं में रुचि ले रहे हैं। कृषि में एआई का बढ़ता प्रभाव आईटी जैसे क्षेत्रों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को नये अवसर प्रदान कर रहा है।

चुनौतियां और संभावनाएं

प्रत्येक किसान की प्रति व्यक्ति भूमि जोत में लगातार हो रही कमी की समस्या का समाधान सामूहिक खेती के माध्यम से किया जा सकता है। एआई की आशाजनक क्षमता के बावजूद, कृषि क्षेत्र में इसके व्यापक उपयोग में कुछ चुनौतियां हैं, जैसे तकनीक की उच्च लागत, ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं की कमी, और डेटा गोपनीयता को लेकर चिंताएं। यदि इन समस्याओं का समाधान किया जाए, तो एआई के निरंतर विकास के साथ वैश्विक खाद्य सुरक्षा जैसी समस्याओं का सामना करते हुए, कृषि को और अधिक टिकाऊ एवं प्रभावी बनाया जा सकता है।

एआई का पशुपालन में उपयोग

एआई तकनीक पशुधन के स्वास्थ्य पर नजर रखने के लिए उपकरण प्रदान करती है। सेंसर की सहायता से पशुओं की गतिविधियां, व्यवहार और स्वास्थ्य संकेतकों पर आधारित डेटा एकत्र किया जा सकता है। एआई प्रणाली इस डेटा का विश्लेषण कर रोगों, चोटों या असामान्य व्यवहार का समय रहते पता लगाने में मदद करती है, जिससे पशुपालन में भी इसका बड़े पैमाने पर उपयोग हो रहा है।

रेनबो ट्राउट में प्रमुख रोगों का निदान

सुरेश चन्द्रा, रेनू जेठी, राजा आदिल हुसैन भट्ट, सुमंत कुमार मलिक और **परवेज अहमद गनी**

"देशभर में प्रधानमंत्री मत्स्य सम्पदा योजना जैसी योजनाओं द्वारा वर्तमान में शीतजल मछली पालन को विभिन्न कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं द्वारा बढ़ावा दिया जा रहा है। पहाड़ों के बहते जल के लिए अनुकूल, उच्च बाजार भाव एवं उपयोगी पोषक तत्वों से भरपूर मत्स्य प्रजातियों में रेनबो ट्राउट (ओंकोरिंकस माइकिस) एक प्रमुख प्रजाति है। पर्वतीय क्षेत्रों में बहते हुए उच्च ऑक्सीजन युक्त (7.0 मि.ग्रा./लीटर) साफ जल में जिसका तापमान 0-21 डिग्री सेल्सियस तक रहता हो, यह प्रजाति आसानी से पाली जा सकती है। ट्राउट मछली मांसाहारी प्रकृति की है, अत: आहार में प्रोटीन की 40-45 प्रतिशत से अधिक मात्रा दी जाती है। इसकी बढ़वार सामान्यत: पहले वर्ष में 200-600 ग्राम, द्वितीय वर्ष में 600-1000 ग्राम तथा तृतीय वर्ष में 1000-2000 ग्राम तक हो जाती है। नर मछली द्वितीय वर्ष में लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेती है, जबकि मादा मछली तृतीय वर्ष के बाद ही अण्डे देती है। किसी भी प्रजाति के पालन एवं उसके स्वास्थ्य प्रबंधन को जानने हेतु उस प्रजाति की जैविकी एवं पालन तंत्र के बारे में जानकारी होना अति आवश्यक है। इससे उत्पादन में वृद्धि एवं रोगों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। इसी प्रकार रेनबो ट्राउट प्रजाति भी कई संक्रमण रोगों से प्रभावित होती है, जिसका सीधा प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है। अत: रोगों का उचित समय पर निदान अति आवश्यक है।"

देश के पर्वतीय राज्यों-हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश आदि में तापमानुसार रेनबो ट्राउट का प्रजनन काल अक्टूबर-नवम्बर से फरवरी-मार्च तक रहता है। मछलीपालन गतिविधियों के सघनीकरण के फलस्वरूप प्राय: अनेक समस्याएं भी देखी जा रही हैं। इसमें मुख्यत: उपस्थित रोगाणु, प्रदूषित जलीय वातावरण तनाव एवं मछलियों की संवेदनशीलता है।

मत्स्य पालन एवं हैचरी में बीज उत्पादन के दौरान ट्राउट में पाई जाने वाली विभिन्न तरह की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का एक बेसलाइन डेटाबेस विकसित करने एवं उनके उचित समाधान खोजने हेतु केन्द्रीय शीतजल मत्स्य अनुसंधान संस्थान द्वारा हैचरी, पालन रेसवे, नर्सरी एवं बड़े रेसवे से विभिन्न नमूने प्राप्त किये गए।

रेनबो ट्राउट में होने वाले निम्न संक्रामक रोग विभिन्न ट्राउट प्रक्षेत्रों पर किये गये अध्ययनों के आधार पर वर्णित किए गए हैं:

नेत्र रोग

यह रोग मुख्य रूप से बड़े आकार की

भाकृअनुप-केन्द्रीय शीतजल मत्स्य अनुसंधान संस्थान, भीमताल (उत्तराखण्ड)

उपचार

उपचार विधि में यदि डाईजनिक ट्रिंमोटोड का संक्रमण है, तो रेसवे में पक्षियों का आवागमन जाल लगाकर कम करना, आने वाले पानी की साफ-सफाई, कार्बनिक पदार्थों एवं कीचड़ आदि को रेसवे में आने से रोकना, समय-समय पर नमक के 2-3 प्रतिशत घोल में डुबोकर छोड़ना आदि लाभकारी हैं। बैक्टीरिया की उपस्थिति में आहार में 70-80 मि. ग्रा./कि.ग्रा. मछली के वजन की दर से ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन या फ्लोरोफैनीकोल को 15 मि.ग्रा./कि.ग्रा. ट्राउट के वजन की दर से 7 दिनों तक देने से लाभ होता है। ट्राउट को संतुलित अच्छी गुणवत्ता का आहार देना तथा समय-समय पर रेसवे की सफाई रोग की रोकथाम एवं नियंत्रण में सहायक होती है।

ट्राउट में देखा जाता है। प्रभावित मछलियों की आंखों में शुरुआत में एक हल्की लाल रेखा दिखाई देती है।

प्रभावित ट्राउट मछली अकेले घूमती दिखाई देती है। धीरे-धीरे पूरी आंख सफेद हो जाती है और एक सफेद परत से ढक जाती है। कुछ मामलों में पूरी आंख का बाहर निकलना, आंख के लेंस का सिकुड़ना, मछलियों का कमजोर दिखना, रंग अधिक काला हो जाना, पूरी तरह से मछलियों का अंधा हो जाना और अन्त में मछलियों की मृत्यु इसके मुख्य लक्षण हैं।

अंधेपन की वजह से मछलियां दिया हुआ आहार ठीक तरह से ग्रहण नहीं कर पाती हैं और धीरे-धीरे कमजोर होकर मरने लगती हैं। कमजोर अंधी ट्राउट को बड़े जलीय पक्षी भी आसानी से अपना ग्रास बना लेते हैं। इस रोग से संक्रमित ट्राउट में मृत्युदर 30 से 40 प्रतिशत तक देखी गयी है।

गर्मियों में इसके प्रभाव से ज्यादा मृत्युदर पाई गयी जबकि सर्दी के महीनों में कम तापमान में प्रभावित मछलियों की हानि बहुत कम रिकार्ड की गयी।

प्रभावित मादा मछलियों से प्राप्त अण्डों का आकार छोटा एवं हैचरी में निषेचन दर एवं उत्तरजीविता भी अपेक्षाकृत कम पायी गयी।

जबड़ों एवं मुंह का लाल रोग

गर्मियों में पालन रेसवे के पानी का तापमान जब धीरे-धीरे बढ़कर 18-20 डिग्री सेल्सियस से अधिक हो और यह अधिक समय तक कायम रहे तथा आने वाले पानी की गुणवत्ता में गिरावट हो अथवा नमीयुक्त संक्रमित आहार दिया जाये, तब इस रोग का प्रकोप रेनबो ट्राउट मछलियों में देखा जाता है।

लाल मुंह के रोग से ग्रसित ट्राउट

मृत मछलियों के नीचे और ऊपर के जबड़ों और मुंह के अन्दर लालिमा लिए हुए सतही घाव दिखाई देते हैं। गलफड़ों के ऊपर भी लाल एवं गम्भीर अवस्था में गलफड़े सड़े हुये दिखाई देते हैं। विभिन्न जगहों पर किये गये शोध कार्यों के अनुसार यह संक्रमण मुख्यत: ग्राम निगेटिव यारसिनिया रुकैरि बैक्टीरिया द्वारा होता है। जिसका अधिकतम फैलाव 17-18 डिग्री सेल्सियस से अधिक जलीय तापमान पर होता है। अनेक ट्राउट फार्म में गर्मियों के महीनों में जब पानी की उपलब्धता लगभग एक चौथाई से भी कम प्राप्त होती है एवं वातावरणीय तापमान बढ़ता है, तब इस संक्रमण का फैलाव अधिक होता है।

इसके उत्पन्न होने के कारणों में वातावरण द्वारा उत्पन्न तनाव के साथ-साथ दिए जाने वाले खाद्य गुणवत्ता में गिरावट एवं अधिक नमी द्वारा पैदा हुए कवक आदि भी इसके बढ़ने में अधिक योगदान देते हैं।

सफेद दाग परजीवी का संक्रमण

यह रेनबो ट्राउट के फ्राई एवं अंगुलिका अवस्था का एक गंभीर रोग है। ट्राउट प्रक्षेत्र पर यह रोग अगस्त-सितम्बर माह में अधिक पाया गया है। इन महानों में ट्राउट फ्राई इंडोर टैंक एवं नर्सरी में तैरती देखी जा सकती है। रोग की दशा

ऊष्मायन के दौरान क्षतिग्रस्त अण्डे

ट्राइकोडिना/चिलडिनेला परजीवियों द्वारा संक्रमण

गर्मियों में यह संक्रमण ट्राउट मछलियों में अधिक देखा जाता है जब उनकी शारीरिक क्रियायें पानी की गुणवत्ता में गिरावट एवं तापमान वद्धि के कारण शिथिल पड़ जाती हैं। यह संक्रमण भी मछली में अंगुलिकाएं एवं किशोर अवस्था में अधिक देखा जाता है। ये परजीवी सामान्यत: त्वचा, पंखों एवं गलफड़ों के ऊपर रहते हैं। गलफड़ों का लाल दिखाई देना, छोटे-छोटे धब्बे दिखाई देना आदि इस संक्रमण के सामान्य लक्षण हैं। रोगी मछलियों में खुजली होने लगती है, जिससे मछलियां शरीर को रगड़ने की कोशिश करती हैं। शरीर का रंग सामान्य से अधिक काला हो जाता है। शरीर का म्यूकस (लसलसा द्रव्य) भी अधिक मात्रा में निकलता है। रोगी मछलियों के झुण्ड अधिकतर पानी की सतह एवं किनारों की तरफ आने लगते हैं। ट्राइकोडिना एवं चिलोडिनिला भी प्रोटोजोन परजीवी हैं। अधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना, जलीय वातावरण प्रदूषण से उत्पन्न तनाव, बहुत अधिक संख्या में मछली का संचयन, अल्पाहार इत्यादि इसके प्रमुख कारण पाये गये हैं। गर्मियों के महीनों में अधिक तापमान एवं जल की कमी से ट्राउट मछलियों में इनका संक्रमण बहुत अधिक देखा गया है। उचित प्रबंधन कार्यो द्वारा इनके संक्रमण को प्रभावी रूप से कम किया जा सकता है। क्लोरोमाइन-टी 40-50 मि.ग्रा के घोल या सोडियम पर कार्बोनेट के 40-50 मि.ग्रा में डुबोकर रेसवे में छोड़ने से इसका नियंत्रण हो जाता है।

सफेद दाग से ग्रसित ट्राउट

में रोगग्रस्त मछलियों के शरीर तथा गलफड़ों के ऊपर छोटे-छोटे सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। बेचैनी के कारण तालाब के किनारों की तरफ ट्राउट का आना, शरीर को किसी वस्तु/दीवार पर रगड़ना आदि प्रमुख लक्षण देखे गए। इसे खुजली के रोग के नाम से भी जाना जाता है। माइक्रोस्कोप द्वारा एक्थोपिथिरियस मल्टीफिलिस नामक परजीवी को आसानी से देखा जा सकता है। यह एक प्रोटोजोन परजीवी है, जो इस रोग का मुख्य कारण है।

रोगी मछलियों की त्वचा एवं पंखों के ऊपर 0.5-1.0 मि.मी. आकार के सफेद दाने जैसी अत्यन्त छोटी-छोटी ग्रन्थियां दिखाई पड़ती हैं, जिनकी संख्या वृद्धि बहुत तेजी से होती है। यह परजीवी 12 से 18 घंटे की अवधि में 1,000 तक नये परजीवियों को जन्म देता है, जो पूरे तालाब में परपोषी की तलाश में घूमते रहते हैं। मौका मिलते ही मछली के शरीर पर चिपककर लाल रक्त कणिकाओं को खाते हैं। इनके संक्रमण से मछलियों में रक्त एवं हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है।

उपचार

वर्तमान समय में तापमान बढ़ने के साथ यह एक प्रमुख रोग के रूप में सामने आ रहा है। अत: इसका प्रभावी नियंत्रण एवं रोकथाम के उपाय समय रहते कर लेना उचित है। क्लोरोटैट्रासाइक्लीन 70 मि.ग्रा/कि.ग्रा ट्राउट की दर से 7 दिनों तक आहार में देने से इस रोग पर पूर्ण रोकथाम पाई गई। इसके साथ ही सितम्बर के दौरान पानी के तापमान में गिरावट भी इसकी रोकथाम में सहायक सिद्ध हुई है। जबड़ों एवं मुंह का रोग अत्यन्त हानिकारक रोग है। इसकी रोकथाम हेतु रेसवे की नियमित सफाई, सही जल आपूर्ति एवं रोग में दवा का प्रयोग लाभदायक होता है।

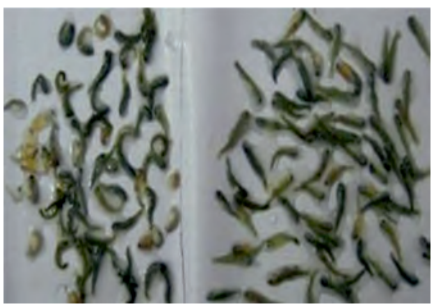

संक्रमित मृत लार्वा

इससे श्वास लेने की शक्ति भी कम हो जाती है। मछली की त्वचा एवं रक्त कोशिकाओं को खाकर यह परिपक्वता प्राप्त करते हैं। इसके बाद सफेद दानेनुमा ग्रन्थियों से बाहर निकल जाते हैं।

डैक्टाइलोगाइरस कृमि द्वारा होने वाला रोग

सामान्यत: ट्रिमैटोड परजीवी की उपस्थिति रेनबो ट्राउट मछलियों में अप्रैल से जून में अधिक देखी गई है। यह परजीवी फाइलम प्लेटीहैल्मैन्थिस के मोनोजिनिया वर्ग में आते हैं। प्रभावित मछलियों के शरीर के ऊपर हल्के नीले रंग का म्यूकस बहुत अधिक देखा गया है।

गलफड़ों के ऊपर हल्के सफेद पीले रंग की धारियां-सी दिखती हैं। बहुत ज्यादा संक्रमण की अवस्था में गलफड़ों के ऊपर हल्का पीलापन लिए रुई जैसी संरचना देखी जाती है। इनका प्रभाव विशेषकर गलफड़ों के ऊपर होता है। जिन तालाबों में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा, अमोनिया की मात्रा एवं मछलियों की संख्या अधिक हो, ऑक्सीजन की मात्रा कम रहती हो तथा पानी का पी.एच सामान्य से नीचे हो उनमें संक्रमण की आशंका बहुत अधिक रहती है।

छोटी-बड़ी सभी मछलियां इससे प्रभावित होती हैं। यह मछली के गलफड़ों के तन्तुओं को खाकर नष्ट कर देते हैं। जिससे श्वसन क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और धीरे-धीरे मछलियां मरने लगती हैं। फॉर्मेल्डिहाइड 20-25 मि.ग्रा./लीटर की दर से तालाब के पानी में डालने से काफी लाभ होता है परन्तु नर्सरी तालाबों के अलावा बड़े तालाबों में इसका प्रयोग काफी महंगा पड़ता है। मैलाथियॉन 0.25 मि.ग्रा./लीटर के हिसाब से देने से भी इसकी रोकथाम हो जाती है, अधिक संक्रमण की स्थिति में दवाई का सेवन करना ही उपयोगी होता है।

मछलियों एवं अण्डों में कवक संक्रमण

अक्टूबर से नवम्बर के बाद कुछ मछलियों के ऊपर सफेद दाग दिखाई देते हैं। कभी-कभी प्रजनन के पूर्व प्रजनकों में व्यवहार परिवर्तन के कारण एक-दूसरे के पंख नोचने जैसी क्रियायें देखी जाती हैं। रेनबो ट्राउट मछलियों का व्यवहार काफी आक्रामक होता है और बड़ी मछली छोटी मछली को नुकसान पहुंचाती हैं। फिर इनमें कवक के संक्रमण की आशंका बढ़ जाती है। इनकी व्यापकता जाड़ों के पूर्व के महीनों में अधिक पायी गई।

उत्तम अण्डे प्राप्त करने के लिए स्ट्रीपिंग हेतु स्वस्थ ट्राउट प्रजनकों का चयन, परिपक्व ट्राउट का सही समय परस्ट्रिपिंग, स्ट्रिपिंग के समय साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखने से इनका प्रभाव कम किया जा सकता है।

फंगल संक्रमित यौकसैक लार्वा

उपचार

इस रोग के प्रबंधन हेतु मछलियों को 2-3 प्रतिशत नमक के घोल में 2-3 मिनट तक डुबोकर तालाब में छोड़ना काफी लाभप्रद पाया गया है। इस क्रिया को एक सप्ताह तक करने से इन परजीवियों से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है। जलीय तापमान के बदलाव से भी इनके नियंत्रण में मदद मिलती है। इसके अतिरिक्त सोडियम परकार्बोनेट के 30-50 मि.ग्रा./लीटर घोल में 1-2 मिनट डुबोने से यह परजीवी मर जाता है। फोर्मोलिन के 25-30 मि.ली./लीटर के हिसाब से रेसवे में छिड़काव भी प्रभावकारी होता है।

स्पेरोलैगनिया नामक कवक के लगातार संक्रमण में यह देखा गया कि अण्डे वाली ट्रे के नीचे कार्बनिक अवशेष जमा होते रहते हैं, जो पाइप लाइन द्वारा प्रवेश पाते हैं। कवक खराब अण्डों के ऊपर विकसित हो जाते हैं और अन्य स्वस्थ अण्डों को भी नुकसान पहुंचाते हैं।

अध्ययनों में पाया गया कि आने वाले पानी के तापमान में अधिक गिरावट एवं बढ़ना इस तरह के संक्रमण के फैलाव में सहायक होता है। आईडोवा बनने के बाद यदि अण्डों को ठीक तरह से फैलाया नहीं गया तो क्लोनिंग हो जाती है। कवकों के उपचार हेतु हैचरी एवं संवर्धन ट्रे की नियमित साफ-सफाई, स्वस्थ प्रजनक ट्राउट मछलियों का चयन और संक्रमण के दौरान समय-समय पर आयोडिन 100 मि.ली/लीटर की दर से देने से लाभ होता है।

प्रक्षेत्रों के निर्माण के समय सही जगह का चयन, स्वस्थ बीज का सही मात्रा में संचय, वैज्ञानिक प्रबंधन कार्यों का उचित निष्पादन और प्रक्षेत्र में ट्राउट की नियमित निगरानी से इस तरह के होने वाली हानियों से बचा जा सकता है। ■

बीज की आयु का माइटोकॉन्ड्रियल आधार

रविश चौधरी, धर्मपाल सिंह, डी. विजय, मंजूनाथ प्रसाद सी.टी. और ज्ञान प्रकाश मिश्रा

"कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों में जीवित रहने और आनुवंशिक जानकारी अगली पीढ़ी तक प्रसारित करने में बीज एक आवश्यक कड़ी है। हालांकि, लंबे समय तक भंडारण से बीज की व्यवहार्यता कम हो जाती है। माइटोकॉन्ड्रिया एक महत्वपूर्ण कोशिकीय अंग है। बीज की उम्र बढ़ने से माइटोकॉन्ड्रिया में आरओएस का स्तर बढ़ जाता है, जो अन्य अंगों के डिसफंक्शन का कारण बनता है। यह मुख्य कोशिकीय घटकों को ऑक्सीडेटिव क्षति के स्तर में होने वाली वृद्धि में अपना योगदान देता है। ये ऑक्सीडेटिव क्षति माइटोकॉन्ड्रिया के संरचनात्मक परिवर्तन और शिथिलता का कारण बनती है। इस प्रकार बीज की उम्र बढ़ने के तंत्र को समझने से बीज के संरक्षण और दीर्घायु के लिए एक नई विधि को बढ़ावा मिलेगा। इससे बीज को खराब होने से बचाया जा सकता है और लंबे समय तक उसकी अंकुरण क्षमता बनी रह सकती है।"

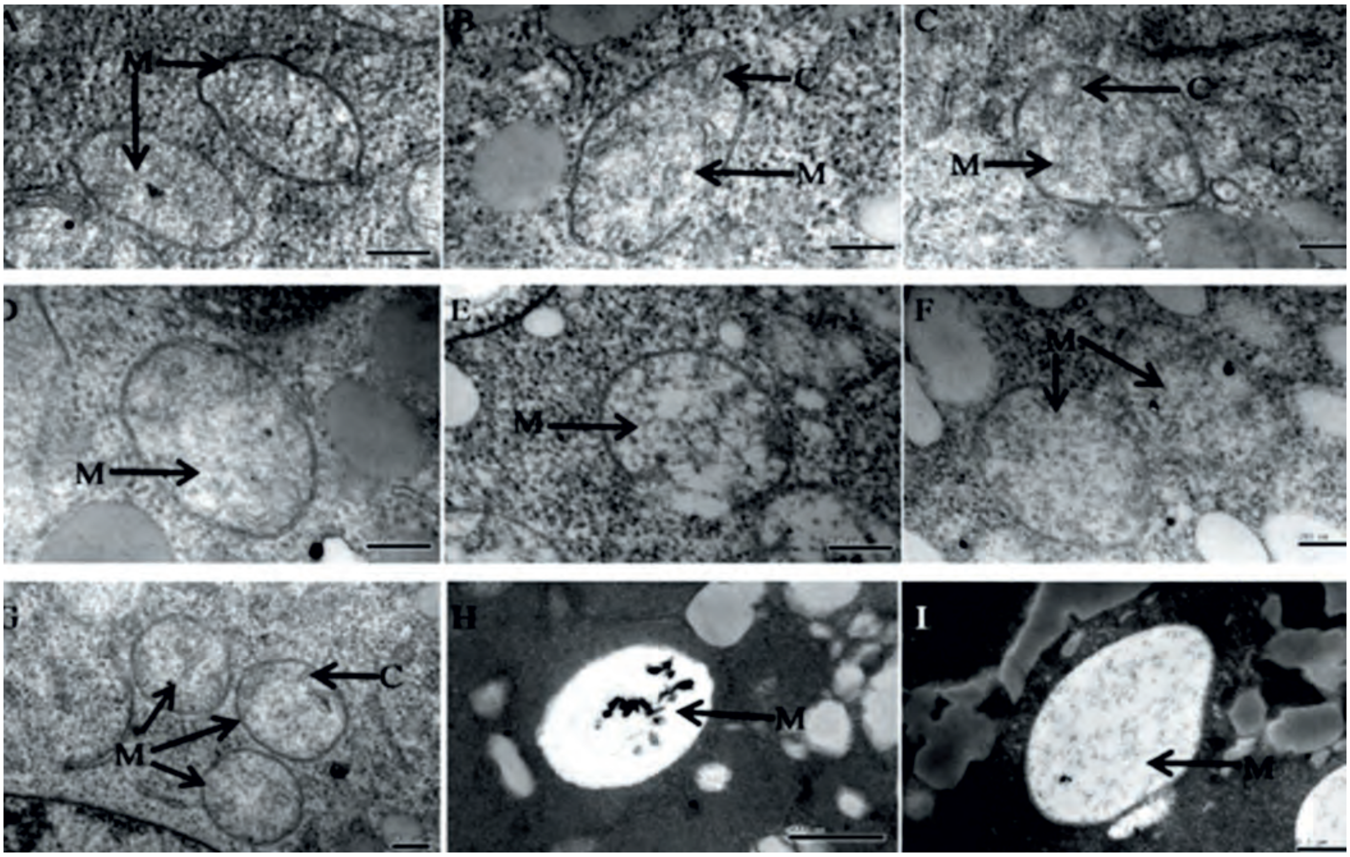

विभिन्न नमी सामग्री स्थितियों के तहत जई के बीजों की भ्रूण कोशिकाओं में माइटोकॉन्ड्रियल संरचनात्मक परिवर्तन दिखाते हुए ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ (A-C) 0 दिन (A), 16 दिन (B) और 40 दिन (C) के लिए 4 प्रतिशत नमी सामग्री वाले बीज; (D-F) 0 दिन (D), 16 दिन (E) और 40 दिन (F) के लिए 10 प्रतिशत नमी सामग्री वाले बीज; (G-I) 0 दिन (G), 16 दिन (H) और 40 दिन (I) के लिए 16 प्रतिशत सामग्री वाले बीज। स्केल बार: 200 एनएम (A, B, C, D, E, F और G)500 एनएम (H) और 0.5 माइक्रॉन (I) IC-क्रिस्टे; M-माइटोकॉन्ड्रिया

आनुवंशिक पौधों के पास नए क्षेत्र बसाने का मौका होता है। बीज पौधों को कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों में जीवित रहने और अगली पीढ़ी तक आनुवंशिक जानकारी प्रसारित करने में मदद करते हैं। लंबे समय तक भंडारण से बीज की उम्र बढ़ने के कारण अंकुरित होने की क्षमता कम हो जाती है।

बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

बीज व्यवहार्यता में कमी के कारणों को समझना जीन बैंकों में पाए जाने वाले जीन संसाधनों के कुशल संरक्षण के लिए आवश्यक है। इससे न केवल जहां बीजों में उम्र बढ़ने की प्रक्रिया शुरू होती है बल्कि वह क्रम भी शामिल है जिसमें यह प्रक्रिया सामने आती है। बीजों के अंदर मौजूद कोशिकाओं में कुछ खास अंग होते हैं, जिन्हें माइटोकॉन्ड्रिया कहा जाता है। अन्य अंगों की तुलना में, माइटोकॉन्ड्रिया अधिक तेजी से और गंभीर रूप से ऑक्सीडेटिव क्षति के संपर्क में आते हैं। ये प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियां (आरओएस) के प्राथमिक उत्पादक होते हैं।

माइटोकॉन्ड्रियल तत्व की एंटीऑक्सीडेंट प्रणाली अन्य कोशिकाओं की तुलना में कम सक्रिय होती है। ये माइटोकॉन्ड्रियल 'दोष' बीज की उम्र बढ़ने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के कोशिकीय कार्यों पर गंभीर प्रभाव डाल सकते हैं।

माइटोकॉन्ड्रिया में आरओएस का उत्पादन

इलेक्ट्रॉन संचारश्रृंखला (ईटीसी) के माध्यम से आरओएस का उत्पादन

इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम मुक्त कण मुख्यतया इलेक्ट्रॉन संचार श्रृंखला में उत्पन्न होते हैं। प्रोटीन कॉम्प्लेक्स के माध्यम से इलेक्ट्रॉन की गति की दर में भिन्नता के कारण, इलेक्ट्रॉनों का रिसाव होता है। इसे ऑक्सीजन अणुओं द्वारा स्वीकार किया जाता है, परिणामस्वरूप सुपरऑक्साइड रेडिकल $(O^{2}\bullet-)$ में बदल जाता है।

मुख्य रूप से माइटोकॉन्ड्रियल आरओएस उत्पादन स्थल एक जटिल माइटोकॉन्ड्रियल इलेक्ट्रॉन संचार श्रृंखला (ईटीसी) है। ईटीसी-मध्यस्थता वाली आरओएस पीढ़ी मुख्य रूप से यूबिसेमीक्विनोन रेडिकल्स की उपस्थिति के कारण होती है, जो एक इलेक्ट्रॉन को ऑक्सीजन में स्थानांतरित कर सकती है, जिससे सुपरऑक्साइड के उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

प्रोटीन द्वारा आरओएस उत्पादन

प्रोटीन, जो इलेक्ट्रॉनों को एंजाइम क्यू पूल में स्थानांतरित करने के साथ-साथ आरओएस के गठन में योगदान करने में भी सक्षम होते हैं। माइटोकॉन्ड्रियल ग्लिसरॉफॉस्फेट डिहाइड्रोजनेज एंजाइम आंतरिक झिल्ली में इंटरमेम्ब्रेन स्पेस के सामने स्थित होता है। मल्टी सबयूनिट पाइरूवेट डिहाइड्रोजनेज कॉम्प्लेक्स और α-कीटोग्लूटारेट डिहाइड्रोजनेज एंजाइम कॉम्प्लेक्स संरचनात्मक रूप से एक समान झिल्ली से बंधे हुए होते हैं। इस प्रक्रिया के तहत सुपरऑक्साइड और हाइड्रोजन पेरॉक्साइड स्रोत के रूप में प्राप्त होते हैं।

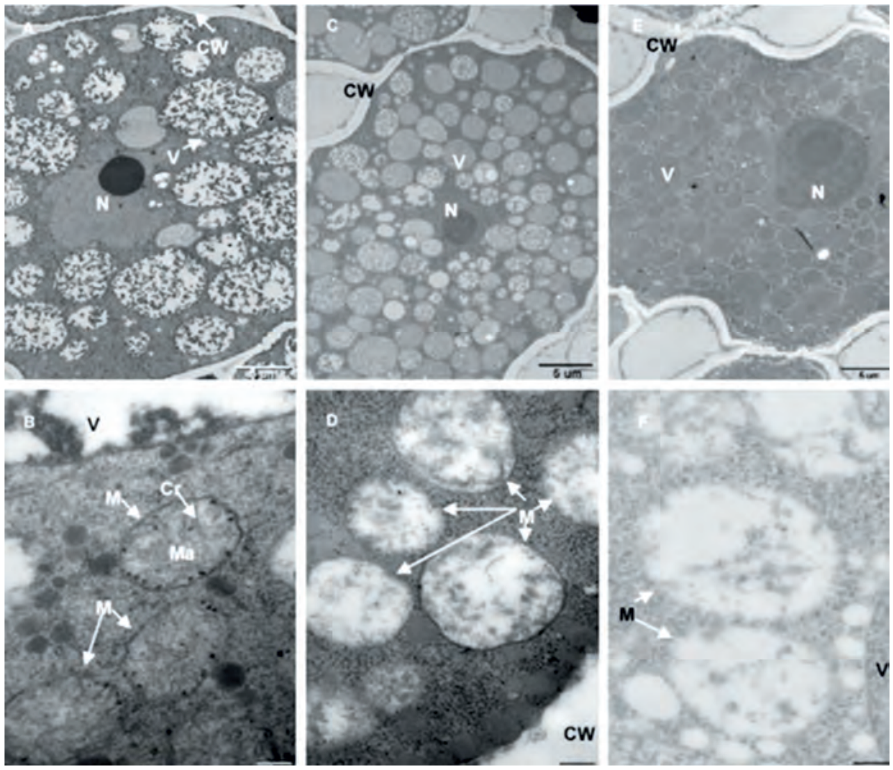

ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ 0 दिन (A और B), 18 दिन (C और D) और 41 दिन (E और F) तक पुराने बीजों से अक्ष कोशिकाओं की अल्ट्रास्ट्रक्चर दिखाते हैं। पैन A, C और E प्रत्येक उम्र बढ़ने के चरण में सेलुलर संरचनाओं का अवलोकन प्रदान करते हैं। पैनल B, D और F प्रत्येक उम्र बढ़ने की अवधि के अनुरूप माइटोकोन्ड्रिया की अल्ट्रास्ट्रक्चर को दर्शाते हैं। मुख्य अंग और संरचनाओं को लेवल किया गया है: M-माइटोकॉड्रिया; Ma-मैट्रिक्स; CR-क्रिस्टे; V-रिक्तिका; N-नाभिक; CW-कोशिका भित्ति।

इस प्रकार α-कीटोग्लूटारेट डिहाइड्रोजनेज के प्राकृतिक इलेक्ट्रॉन स्वीकार्यता निकोटिनेमायीड एडीनिन की उपलब्धता पर निर्भर होते हैं। सामान्यत: कई प्रोटीनों में उनके सक्रिय स्थल में फ्लेविन होता है, जो सीधे इलेक्ट्रॉनों के साथ संपर्क करता है और इलेक्ट्रॉन रिसाव में संभावित भूमिका निभाता है। एकोनिटेज, माइटोकॉन्ड्रियल मैट्रिक्स में एक एंजाइम, आयरन और सल्फर की उपस्थिति में फेंटन प्रतिक्रिया के दौरान हाइड्रोजन पेरोक्साइड को हाइड्रॉक्सिल रेडिकल में बदलने में सक्षम होते हैं।

इसके अतिरिक्त माइटोकॉन्ड्रिया, नाइट्रिक ऑक्साइड से प्राप्त प्रतिक्रियाशील नाइट्रोजन प्रजातियों का एक मुख्य स्रोत है। नाइट्रिक ऑक्साइड एंजाइमेटिक रूप से नाइट्रिक ऑक्साइड सिंथेस (एनओएस) द्वारा उत्पन्न होता है। ये एंजाइम कैल्शियम (Ca^{2+}) आयनों और कम थिओल्स की उपस्थिति में एक सब्सट्रेट के रूप में एल-आर्जिनिन और एक इलेक्ट्रॉन स्रोत के रूप में एनएडीपीएच (NADPH) का उपयोग करके नाइट्रिक ऑक्साइड को संश्लेषित करते हैं। माइटोकॉन्ड्रियल इलेक्ट्रॉन संचार भी नाइट्रिक ऑक्साइड को उत्पन्न कर सकता है।

नाइट्रिक ऑक्साइड का उच्च स्तर ऑक्सीजन-नाइट्रोजन या सल्फरयुक्त अमीनो अम्ल की साइड चेन के नाइट्रोसेशन से जुड़ा होता है, जिसके परिणामस्वरूप इसमें कार्यात्मक परिवर्तन होते हैं। इसमें ऑक्सीजन (O^2), हाइड्रोजन पेरॉक्साइड (H_2O_2) का उत्पादन करने के लिए विघटित हो जाती है और नाइट्रिक ऑक्साइड सहित अन्य

डीएनए क्षति

माइटोकॉन्ड्रियल डीएनए में उत्परिवर्तन का सबसे मान्यता प्राप्त स्रोत आरओएस है, जो ईटीसी द्वारा निर्मित होता है। इसके अलावा, हाइड्रोजन पेराऑक्साइड द्वारा प्रेरित स्ट्रैंड माइटोकॉन्ड्रियल डीएनए में बुनियादी साइटों पर टूट जाता है। आरओएस द्वारा डीएनए न्यूक्लियोटाइड में क्षति, शर्करा के अवशेषों के ऑक्सीकरण और स्ट्रैंड के टूटने के कारण होती है। डीऑक्सीराइबोज और न्यूक्लियोबेस दोनों आरओएस ऑक्सीडेटिव क्षति के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। डीएनए विखंडन का कारण बनने वाला सबसे आक्रामक स्रोत हाइड्रॉक्सिल (OH−) आरओएस है। आरओएस मुख्य रूप से हाइड्रोजन परमाणु जारी करके डीएनए के अणुओं में डीऑक्सीराइबोज को बाधित करता है। ऑक्सीकरण के माध्यम से हुई कमी कार्बोहाइड्रेट-फॉस्फेट वाली संरचनाओं को तोड़ देती है। इससे एकल और डबल-स्ट्रैंड टूट जाते हैं और आधारों का रासायनिक संशोधन शुरू होता है। फलस्वरूप कार्बोनिल और एमिन समूहों का क्रॉस-लिंकिंग होता है। आरओएस लगभग 20 विभिन्न प्रकार के डीएनए न्यूक्लियोटाइड क्षति को प्रेरित करता है। इनमें से सबसे मुख्य ग्वानिन (जी) में होने वाला संशोधन है। इसके परिणामस्वरूप 8-ऑक्सोगुआनिन का गठन होता है, जिसे ऑक्सीडेटिव तनाव का बायोमार्कर माना जाता है। डीएनए में इस आधार की उपस्थिति अनुप्रस्थ उत्परिवर्तन (जीसी→टीए) में योगदान करती है।

रेडिकल्स के साथ प्रतिक्रिया कर सकता है। इस प्रतिक्रिया का उत्पाद, पेरॉक्सीनाइट्राइट (ONOO–), एक शक्तिशाली ऑक्सीडेंट है, जो ऑक्सीकरण और प्रोटीन नाइट्रेशन ($NO^{\bullet}$ f $O2^{\bullet-} \rightarrow ONOO^{-}$) की ओर ले जाता है।

प्रति-ऑक्सीनाइट्राइट एसएच समूहों और अन्य एंटीऑक्सिडेंट्स की कमी, लिपिड के ऑक्सीकरण, डीएनए बेस के डीमिनेशन, प्रोटीन में सुगंधित अमीनो अम्ल के अवशेषों के नाइट्रेशन और मिथिओनिन के सल्फोक्साइड के ऑक्सीकरण का कारण बन सकता है। माइटोकॉन्ड्रिया में नाइट्रोसेशन के लिए एक प्रमुख लक्ष्य प्रोटीन श्वसन कॉम्प्लेक्स बनाना है।

बीज के माइटोकॉन्ड्रिया में ऑक्सीडेटिव क्षति

आरओएस के संचयन से ऑक्सीडेटिव क्षति और शिथिलता तथा झिल्ली प्रणाली के विकारों के साथ-साथ माइटोकॉन्ड्रियल प्रोटीन, डीएनए और लिपिड की ऑक्सीडेटिव क्षति भी होती है।

प्रोटीन की ऑक्सीडेटिव क्षति

माइटोकॉन्ड्रियल प्रोटीन की ऑक्सीडेटिव क्षति में पाइरूवेट डिकार्बोक्सिलेज कॉम्प्लेक्स की सबयूनिट, एटीपी सिंथेज की सबयूनिट और ट्राइकार्बोक्सिलिक एसिड (टीसीए) चक्र के एंजाइमों की क्षति भी शामिल होती है। आरओएस अमीनो अम्ल के प्रत्यक्ष ऑक्सीकरण, सीआईएस अवशेषों के ऑक्सीकरण का कारण बनता है, जो डाइसल्फाइड बंध बनाता है।

मेथिओनिन अवशेषों के ऑक्सीकरण से जो मेथिओनिन सल्फॉक्साइड बनता है। इससे आर्जिनिन, लाइसिन, प्रोलाइन, हिस्टिडाइन, सेरीन और थ्रेओनीन अवशेषों का ऑक्सीकरण होता है, परिणामस्वरूप साइड में कार्बोनिल समूह बनता है। इस प्रक्रिया द्वारा माइटोकॉन्ड्रियल प्रोटीन की गतिविधि को पोस्ट-ट्रांसलेशनल स्तर पर नियंत्रित किया जाता है, उदाहरणतः, एस-नाइट्रोसिलेशन (एक कार्बनिक अणु में नाइट्रिक ऑक्साइड समूह को जोड़ने की प्रक्रिया, जो इसे निष्क्रिय बनाती है)।

लिपिड में परिवर्तन

माइटोकॉन्ड्रियल झिल्लियों में लिपिड पेरोक्सीडेशन झिल्ली लिपिड के पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड के पेरोक्सीडेशन को संदर्भित करता है। मैलोन्डियलडिहाइड (एमडीए) और 4-हाइड्रॉक्सी-2-नॉनिल (एचएनई) लिपिड पेरोक्सीडेशन के अंतिम उत्पाद के रूप में प्राप्त होते हैं, जो कोशिकाओं के साथ क्रिया करके उनके कार्यों को कम या समाप्त कर सकते हैं।

एमडीए डीएनए आधारों के साथ प्रतिक्रिया कर सकता है, जिसके परिणामस्वरूप जीन उत्परिवर्तन होता है, जबकि 4-हाइड्रॉक्सी-2-नॉनिल (एचएनई) ज्यादातर प्रोटीन के साथ प्रतिक्रिया करता है, जिससे कार्यात्मक परिवर्तन होते हैं। नम ऊतकों में माइटोकॉन्ड्रियल एमडीए और हाइड्रोजन पेरोक्साइड सामग्री में वृद्धि माइटोकॉन्ड्रियल झिल्ली की संरचना और उसके कार्य को नुकसान पहुंचाती है।

दीर्घायु वाले बीज के माइटोकॉन्ड्रिया में एंटीऑक्सीडेंट प्रणाली

आरओएस उत्पादन और एंटीऑक्सीडेंट द्वारा विषहरण के बीच होने वाला संतुलन पौधों की कोशिकाओं में रेडॉक्स प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित करता है। श्वसन और ऑक्सीकृत तनाव की प्रतिक्रियाओं सहित विभिन्न अन्य चयापचय प्रक्रियाएं, कोशिकीय रेडॉक्स अवस्था द्वारा सह-नियंत्रित होती हैं।

पादपों के माइटोकॉन्ड्रियल मैट्रिक्स में आरओएस स्कैवेंजिंग सिस्टम शामिल होता है। इसमें एंजाइमैटिक और गैर-एंजाइमेटिक एंटीऑक्सीडेंट सिस्टम जैसे मैंग्नीज-सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेज (एमएन-एसओडी) और एस्कॉर्बेट-ग्लूटाथियोन (एएसए-जीएसएच) चक्र, कैटालेज (सीएटी) और पेरोक्सीरेडॉक्सिन (पेरोक्सीरेडॉक्सिन समेत) आईआईएफ) शामिल होते हैं।

बीजों की उम्र बढ़ने के दौरान, माइटोकॉन्ड्रियल एएसए-जीएसएच चक्र में कमी के परिणामस्वरूप एएसए और जीएसएच कम ऑक्सीकृत होते हैं। इससे आरओएस का संचय हो सकता है, जो माइटोकॉन्ड्रियल डिसफंक्शन को प्रभावित करता है। कृत्रिम रूप से वृद्ध बीजों में माइटोकॉन्ड्रियल एसओडी, एपीएक्स, एमडीएचएआर, डीएचएआर और जीआर जैसे आरओएस एंजाइमों की गतिविधियों में कमी देखी गयी है।

आरओएस और माइटोकॉन्ड्रियल डिसफंक्शन के कारण माइटोकॉन्ड्रिया की संरचना में परिवर्तन विभिन्न प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करते हैं, जो माइटोकॉन्ड्रियल और परमाणु जो बीज आयु के लिए महत्वपूर्ण हैं, उनकी जीन अभिव्यक्ति को नियंत्रित करते हैं। ■

बीज संरक्षण

माइटोकॉन्ड्रिया एक महत्वपूर्ण कोशिकीय अंग है। इसका मुख्य उद्देश्य कोशिकीय श्वसन की प्रक्रिया के दौरान एटीपी के रूप में ऊर्जा उत्पन्न करना है। बीज की उम्र बढ़ने से माइटोकॉन्ड्रिया में आरओएस का स्तर बढ़ जाता है और आरओएस का बढ़ा हुआ स्तर अन्य अंगों के डिसफंक्शन का कारण बनता है। यह मुख्य कोशिकीय घटकों को ऑक्सीडेटिव क्षति के स्तर में होने वाली वृद्धि में अपना योगदान देता है। इससे कार्यात्मक समूहों के ऑक्सीकरण के कारण एंजाइमी गतिविधियों में कमी आती है। फलस्वरूप कोशिकीय झिल्ली के लिपिड पेरोक्सीडेशन में वृद्धि होती है। श्वसन मशीनरी, जो रेडॉक्स रसायन विज्ञान पर आधारित है। वह बदलती परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील रूप से प्रतिक्रिया करती है। ये ऑक्सीडेटिव क्षति माइटोकॉन्ड्रिया के संरचनात्मक परिवर्तन और शिथिलता का कारण बनती है। अंत में यह कह सकते हैं कि भविष्य में इस प्रकार बीज की उम्र बढ़ने के तंत्र को समझने से बीज के संरक्षण और दीर्घायु के लिए एक नई विधि को बढ़ावा मिलेगा। इससे बीज को खराब होने से बचाया जा सकता है और लम्बे समय तक उसकी अंकुरण क्षमता बनी रह सकती है।

बीजों में माइटोकॉन्ड्रियल गतिविधि

कोशिका वृद्धि और चयापचय क्रियाओं के लिए माइटोकॉन्ड्रिया ऊर्जा का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके अलावा, माइटोकॉन्ड्रिया प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (एमटीआरओएस) के उत्पादन के लिए भी प्रमुख स्थल हैं। इस प्रकार, आरओएस होमियोस्टेसिस के रखरखाव में शामिल रहता है। सुपरऑक्साइड, हाइड्रोजन पेराऑक्साइड और हाइड्रॉक्सिल रेडिकल्स जैसे आरओएस जो सेलुलर घटकों का ऑक्सीकरण करते हैं, फलस्वरूप यह कोशिकीय अंग कोशिका झिल्ली की अखंडता और उसके मुख्य कोशिकीय घटकों के बीच सामंजस्य बनाने का कार्य करते हैं।

जुलाई के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, अंजली पटेल, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस.एस. राठौर और **ऋषभ सिंह चंदेल**

"जुलाई माह खरीफ की फसलों के लिए सबसे महत्वपूर्ण महीनों में से एक है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां खेती वर्षा पर निर्भर करती है। इस महीने मानसून आ चुका होता है, इसलिए जरूरी हो जाता है कि सभी कार्यों को समय से किया जाये। खरीफ फसलों का देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में आधे से भी अधिक का योगदान होता है। खरीफ मौसम में उगायी जाने वाली मुख्य फसलें जैसे-धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, अरहर, मूंग, उड़द, लोबिया, सोयाबीन, मूंगफली, सूरजमुखी, कुसुम, तिल, कपास एवं जूट आदि प्रमुख हैं। फसलों के उत्पादन में उपयक्त सस्य विधियां अपनाकर उत्पादन लागत में कमी एवं प्रति इकाई उपज में वृद्धि की जा सकती है। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि अधिक उपज देने वाली उन्नत प्रजातियों की गुणवत्ता का स्वस्थ बीज, संतुलत पोषक तत्व प्रबंधन, एकीकृत खरपतवार प्रबंधन, समुचित जल प्रबंधन, एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन, उपयक्त समय पर फसल की कटाई एवं मड़ाई तथा उपयक्त भंडारण इत्यादि अपनाकर किसान लागत कम करके उत्पादन में बढ़ोतरी कर सकते हैं। कुल मिलाकर, जुलाई का महीना कृषि गतिविधियों के लिए अत्यंत व्यस्त और निर्णायक होता है, जो पूरे कृषि चक्र की नींव रखता है। अतः इस लेख में फसलों के उत्पादन की आधुनिक वैज्ञानिक विधियों के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत जानकारी दी गई है।"

धान की खेती के लिए समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। इसके पौधों के जीवनकाल में औसत तापमान 20-35 डिग्री सेल्सियस की आवश्यकता होती है। पौधे के अच्छे विकास के लिए अच्छी वर्षा की आवश्यकता होती है।

- **मृदाः** धान की खेती के लिए मृदा का पी-एच मान प्रायः 6.5-8.5 सर्वोत्तम होता है। इसके लिए अच्छी जलधारण क्षमता वाली मटियार या मटियार दोमट एवं चिकनी मृदा अच्छी मानी जाती हैं। सिंचाई की समुचित व्यवस्था तथा सही प्रबंधन से अधिकतर मृदा में धान की अच्छी पैदावार ली जा सकती है।
- **खेत की तैयारीः** गर्मी की जुताई के बाद 2-3 जुताइयां करके खेत की तैयारी करनी चाहिए। खेत को समतल करने के साथ मजबूत मेड़बंदी भी कर देनी चाहिए, ताकि वर्षा का पानी अधिक मात्रा में संचित किया जा सके। धान की रोपाई के लिए एक सप्ताह पूर्व खेत की सिंचाई कर दें एवं रोपाई से पहले 2-3 जुताइयां हैरो से करें। इसके बाद पानी भरकर खेत में पडलर से जुताई करके एवं पाटा लगाकर मिट्टी को लेहयुक्त एवं समतल बना दें। इसमें 20-25 कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा को 60 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद या वर्मीकम्पोस्ट में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर एक सप्ताह तक छाया में सुखाने के बाद खेत में एक समान छिड़काव कर दें, जिससे मृदाजनित रोगों में कमी आयेगी।
- **रोपाईः** इसके लिए 20-25 दिनों पुरानी

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

पौध, जिसमें 4-5 पत्तियां हों, उपयुक्त होती है। मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियों की रोपाई माह के प्रथम पखवाड़े तक तथा शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की रोपाई जुलाई के दूसरे पखवाड़े तक पूरी कर लेनी चाहिए। धान की सुगंधित प्रजातियों की रोपाई माह के अन्त में प्रारंभ करें। प्रत्येक वर्ष धान-गेहूं फसलचक्र अपनाने वाले क्षेत्रों में हरी खाद या 10-12 टन/हैक्टर गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग करें।

- पौध उखाड़ने से एक दिन पहले क्यारी में अच्छी सिंचाई करें और रोपाई वाले दिन सुबह स्वस्थ, रोगमुक्त और शुद्ध किस्म की पौध को अलग करके 5-8 सें.मी. व्यास के नरम बंडलों में बांध लेना चाहिए। रोपाई 20-30×15 सें.मी. की दूरी पर करें। 3 सें.मी. की गहराई पर एक जगह पर 2-3 पौधे ही लगायें। देर से अथवा ऊसर मृदा में रोपाई करने की अवस्था में रोपाई के लिए लगभग 35-40 दिन पुरानी पौध को 15×10 सें.मी. की दूरी पर 3-4 पौधों के समूह में प्रत्येक स्थान पर लगाएं।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के अनुसार ही करना चाहिए। सामान्यत: धान की बौनी प्रजातियों के लिये 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 60 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर की दर से प्रयोग कर सकते हैं। बासमती प्रजातियों के लिए 80-100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40-50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20-25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर देना चाहिए। सिंगल सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं जिंक की पूरी मात्रा आखिरी जुताई के समय देनी चाहिए। यूरिया की एक तिहाई मात्रा रोपाई के 5-8 दिनों बाद (पौध अच्छी तरह से जड़ पकड़ ले), दूसरी 25-30 दिनों बाद (कल्ले फूटते समय) और तीसरी 50-60 दिनों बाद (फूल आने से पहले) खड़ी फसल में छिड़काव करें। यदि हरी खाद या गोबर की खाद का प्रयोग किया गया हो, तो नाइट्रोजन की मात्रा 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर तक कम कर सकते हैं।
- **जैव उर्वरक का प्रयोग:** नील हरित शैवाल की अधिकतर प्रजातियां प्रतिवर्ष लगभग 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर मृदा में स्थापित करती हैं, जिसका प्रयोग धान की फसल द्वारा होता है। रोपाई के एक सप्ताह बाद, खड़े पानी में 10-15 कि.ग्रा. जैव उर्वरक प्रति हैक्टर की दर से बिखेर दें। शैवाल का प्रयोग कम से कम तीन वर्ष तक नियमित करें और ध्यान रखें कि खेत में पानी सूखने न पाये।
- **खरपतवार नियंत्रण:** खरपतवार प्राय: फसल से नमी, पोषक तत्व, सूर्य का प्रकाश तथा स्थान के लिये प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे मुख्य फसल के उत्पादन में कमी आ जाती है। धान की फसल में खरपतवारों द्वारा 15-85 प्रतिशत की हानि आंकी गई है। सीधे बोए गए धान की तुलना में रोपाई वाले धान में खरपतवार का प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है। खरपतवार रोपाई वाले धान में 4-12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 1-13 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 7-14 कि.ग्रा. पोटाश तथा सीधे बोये गये धान में 20-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 5-15 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 15-50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से शोषित कर लेते हैं तथा धान की फसल को पोषक तत्वों से वंचित कर देते हैं।

धान की सीधी बुआई

- धान की सीड ड्रिल द्वारा सीधी बुआई संसाधन संरक्षित खेती की एक तकनीक है, जिससे 20 प्रतिशत जल, समय तथा श्रम की बचत होती है। वर्तमान समय में इसके लिए जीरो टिल प्लान्टर, टर्बो सीडर, पीसीआर प्लान्टर, रोटरी डिस्क ड्रिल, डब्ल्यू डिस्क कल्टीवेटर आदि मशीनें उपलब्ध हैं। धान की अच्छी फसल के लिए बुआई का समय, बीज दर, बीज की गहराई, बीजोपचार एवं खरपतवार नियंत्रण इत्यादि महत्वपूर्ण क्रियाएं हैं। इस विधि में फसल 10-15 दिन पहले तैयार हो जाती है। इससे अगली फसल की बुआई उचित समय से करके पूरी फसल प्रणाली की उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिलती है।

- धान की सीधी बुआई उचित नमी में खेतों में आवश्यकतानुसार ग्लाइफोसेट एवं पैराक्वाट खरपतवारनाशी का प्रयोग कर जीरो टिल मशीन से की जाती है।
- धान की सीधी बुआई करते समय कुछ अहम बातों का ध्यान रखना जरूरी है: बुआई करने से पहले जीरो टिल मशीन का संशोधन कर लेना चाहिए। इससे 20-25 कि.ग्रा/हैक्टर बीज एवं 120 कि.ग्रा. डीएपी एवं 3-4 सें.मी. गहराई सुनिश्चित हो। बीज अधिक गहराई में जाने से अंकुरण एवं कल्ले कम होते हैं और पैदावार में कमी आ जाती है। इसके अलावा ड्रिल की नली बंद न हो, इसका खास ध्यान रखना चाहिए। यूरिया और म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग मशीन के खाद बक्से रखकर नहीं करना चाहिए। इनका प्रयोग टॉप ड्रेसिंग के रूप में पौध स्थापित होने के बाद सिंचाई उपरान्त करना चाहिए।
- **नई किस्में:** भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने बासमती धान की 2 रोबिनोवीड किस्में विकसित की हैं: अ. पूसा बासमती 1985, ब. पूसा बासमती 1979।

श्री (एस.आर.आई.) पद्धति

- यह एक ऐसी पद्धति है, जिसमें जल उपयोग दक्षता, मृदा उत्पादकता, श्रम शक्ति एवं निवेशित पूंजी की दक्षता एक साथ बढ़ाने की क्षमता है। श्री पद्धति से उगाई गई फसल द्वारा परम्परागत विधि की अपेक्षा औसतन 10-30 प्रतिशत अतिरिक्त पैदावार विभिन्न स्थानों पर प्राप्त की गयी है। इसके अन्तर्गत 50 प्रतिशत तक सिंचाई जल की बचत, 90 प्रतिशत बीज की बचत, मृदा स्वास्थ्य में सुधार, 30-40 प्रतिशत रासायनिक उर्वरक की बचत एवं लागत में कमी का दावा किया जाता है।
- रोपाई के लिए निर्धारित दूरी बनाए रखने हेतु रस्सी में बांधी गई गांठों या लकड़ी या लोहे से बने वर्गाकार मार्कर

सारणी 1. धान में खरपतवार नियंत्रण हेतु विभिन्न खरपतवारनाशी

खरपतवारनाशी	सक्रिय तत्व	मात्रा/हैक्टर	प्रयोग का समय	खरपतवारों पर नियंत्रण
पायराजोसल्फ्यूरॉन ईथाइल (10 प्रतिशत)	20 ग्राम	200 ग्राम	रोपाई/बुआई के 3 दिनों के अन्दर	मोथाकुल एवं चौड़ी पत्ती
बिस्पायरीबैक सोडियम (10 प्रतिशत) (नोमिनी गोल्ड)	25 ग्राम	250 मि.ली.	रोपाई/बुआई के 17-20 दिनों बाद	घासकुल एवं चौड़ी पत्ती
एनीलोफॉस (एनीलोगार्ड)	400-500 ग्राम	-	बुआई/रोपाई के 3-4 दिनों बाद	घास एवं मोथाकुल के खरपतवार
प्रेटिलाक्लोर (37 प्रतिशत)	555 ग्राम	1500 मि.ली.	बुआई के 3 दिनों के अन्दर	घासकुल एवं चौड़ी पत्ती
बेनसल्फ्यूरॉन मिथाइल (0.6 प्रतिशत)+ प्रेटिलाक्लोर (6 प्रतिशत)	6+600 ग्राम	10 कि.ग्रा.	रोपाई के 8 दिनों के अन्दर	घासकुल एवं चौड़ी पत्ती
पेण्डीमेथिलीन (30 प्रतिशत)	750-1000 ग्राम	2.5-3.3 ली.	बुआई के 3 दिनों के अन्दर	घासकुल एवं चौड़ी पत्ती
पिनाक्सुलम (1.02 प्रतिशत)+ साइहैलोफॉप ब्यूटाईल (5.1 प्रतिशत)	135 ग्राम	2250 मि.ली.	बुआई के 20 दिनों बाद	घासकुल, मोथाकुल एवं चौड़ी पत्ती
फेनाक्जाप्राप (5 प्रतिशत)+ इथाक्सी सल्फ्यूरॉन (15 प्रतिशत)	60+20 ग्राम	667 मि.ली.+ 135 ग्राम	बुआई के 20 दिनों बाद	घासकुल, चौड़ी पत्ती एवं मोथाकुल
फेनाक्जाप्राप पी-ईथाइल (9 प्रतिशत)	60 ग्राम	667 मि.ली.	बुआई के 25 दिनों बाद	घासकुल
मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल (10 प्रतिशत)+ क्लोरीम्यूरॉन ईथाइल (10 प्रतिशत)	4 ग्राम	20 ग्राम	बुआई के 25 दिनों बाद	मोथाकुल एवं चौड़ी पत्ती
इथाक्सी सल्फ्यूरॉन (15 प्रतिशत)	20 ग्राम	135 ग्राम	बुआई के 20 दिनों बाद	घासकुल एवं चौड़ी पत्ती

का उपयोग किया जा सकता है। श्री पद्धति में मात्र 8-12 पुरानी पौध का उपयोग होता है, जिसे खुरपी से इस प्रकार उखाड़ें कि बीज चोल एवं जड़ों के साथ मिट्टी भी लगी रहे। यदि नर्सरी मैट विधि से तैयार की गई है, तो मैट को उठाकर सीधे रोपण स्थल तक ले जाया जा सकता है। इसमें 2-3 पर्णीय पौध को 25×25 सें.मी. की दूरी पर, 2-3 सें.मी. की गहराई पर अंगूठे एवं अनामिका की सहायता से, एक-एक पौध बीज चोल एवं मिट्टी सहित प्रति हिल बगैर पानी भरे खेत में लगाएं। पौध की जड़ों को सूखने से बचाने के लिए नर्सरी से निकालने के आधे घंटे के भीतर रोपाई कर लेनी चाहिए।

- कोनो वीडर द्वारा खरपतवार नियंत्रण करने से खरपतवार मिट्टी में दबकर सड़ते हैं, जिससे जैविक खाद बनती है और पौधों को पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। इसके उपयोग से मिट्टी भुरभुरी होती है और वायु संचार बढ़ जाता है, जिससे पौधों की वृद्धि बेहतर होती है। रोपाई के 10 दिनों बाद से प्रत्येक 10 दिनों के अंतराल पर 3-4 बार वीडर चलाना चाहिए। इसके लिए खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है।

श्री पद्धति से धान की खेती

- **धान की संडा रोपाई (डब्ल्यू ट्रान्सप्लाटिंग):** पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं पश्चिमी बिहार में धान की फसल को जुलाई के प्रारंभ से अक्टूबर के मध्य तक लगभग 100 दिनों तक अत्यधिक नम अवस्था का सामना करना पड़ता है। इन क्षेत्रों में धान की खेती अपलैन्ड या लो लैन्ड में की जाती है। अपलैन्ड खेतों में मानसून आने के बाद लम्बे ब्रेक की स्थिति में धान की फसल को जल की कमी का सामना करना पड़ता है, वहीं दूसरी तरफ लो लैन्ड खेतों में बहुत अधिक वर्षा हो जाने पर खेतों में आवश्यकता से अधिक पानी, जल निकास की व्यवस्था समुचित न होने से इकट्ठा हो जाता है, जिससे रोपाई में विलंब हो जाता है। इन दोनों ही स्थितियों में धान के पौधों में कम कल्ले निकलते हैं तथा बढ़वार अच्छी नहीं होती है। ऐसे में संडा, जिसमें पूर्व में रोपे गये मदर प्लांट से कल्लों को अलग करके प्राप्त किया जाता है और रोपाई दोबारा की जाती है। पहली रोपाई 3 सप्ताह की अवधि के पौधे 20×10 सें.मी. की दूरी पर करें एवं दूसरी रोपाई पहले रोपे गये धान के 3 सप्ताह बाद करें, जिसे 10×10 सें.मी. की दूरी पर रोपना चाहिये।

मक्का

- सिंचित क्षेत्रों में मक्का की बुआई मानसून आने के 10-15 दिनों पहले कर देनी चाहिए। वर्षा आधारित क्षेत्रों में सामान्यत: वर्षा के आने पर ही मक्का की बुआई की जाती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मेड़ बनाकर उनके ऊपर मक्का की बुआई करनी चाहिए तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में कूड़ में बुआई करनी चाहिए। इसकी बुआई के लिए संकर प्रजातियों की 20-22 कि.ग्रा., संकुल प्रजातियों की 18-20 कि.ग्रा. एवं देसी-छोटे दाने वाली प्रजाति के लिए 16-18 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बीज पर्याप्त होता है।
- स्वीटकॉर्न का बीज हल्का होने के कारण 7-10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। अच्छे अंकुरण के लिए बीजों को रातभर पानी में भिगोकर तथा सुबह छाया में सुखाकर बोयें। मक्का में पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 75×20 सें.मी. या 60×25 सें.मी. रखते हैं। यदि मक्का की बुआई स्वीटकॉर्न, बेबीकॉर्न एवं पॉपकॉर्न के

लिए की जा रही है, तो पौधों के बीच की दूरी क्रमशः 60-75×20-25, 45×15 सें.मी. एवं 60×20 सें.मी. उचित पाई गई है। बीज बोने से पूर्व 1 कि.ग्रा. बीज को 2.5 ग्राम थीरम या 2.0 ग्राम कार्बेण्डाजिम से शोधित कर लें। जिन क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप होता है, वहां आखिरी जुताई पर क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 2.5 लीटर मात्रा को 5.0 लीटर पानी में घोलकर 20 कि.ग्रा. बालू में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में मिला दें। इसके अलावा बुआई से पहले एजोस्पिरिलम के 3-4 पैकेट से उपचार करने से बेबीकॉर्न की गुणवत्ता और उपज में वृद्धि होती है।

मक्का की उन्नत संकर प्रजातियां

- उन्नत पूसा एचएम-4, उन्नत पूसा एचएम-8, उन्नत पूसा एचएम-9, पूसा जवाहर संकर मक्का-1, एचएम-4, एएच-4725, एसएमएच-3904, जेकेएमएच-502 आदि।

मक्का की प्रोटीनयुक्त प्रजातियां

- उन्नत पूसा विवेक क्यूपीएम-9, एचक्यूपीएम-1, एचक्यूपीएम-4, एचक्यूपीएम-5, एचक्यूपीएम-7 आदि प्रमुख हैं। इन प्रजातियों को उन क्षेत्रों में बोना चाहिए जहां पर सिंचाई देकर समय से बुआई हो सके।

स्वीटकॉर्न की उन्नत प्रजातियां

- जैसे-एचएम-4, गंगा सफेद-2, पूसा अर्ली हाइब्रिड मक्का-3 आदि प्रमुख हैं।

बेबीकॉर्न (शिशु मक्का) की उन्नत प्रजातियां

- भुट्टे की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए बेबीकॉर्न की प्रजाति का चयन करें, भुट्टे के दानों का आकार और दानों का सीधी पंक्ति में होना, एक समान भुट्टे पकने वाली प्रजाति जो मध्यम ऊंचाई की अगेती परिपक्व (55 दिन) हों, उनको प्राथमिकता देनी चाहिए। बेबीकॉर्न की उन्नत प्रजातियां जैसे-शुगर बेबी, वीएल-78, एचएम-4, वीएन-42, एचएएम-129, गोल्डन बेबी एवं जी 5414 आदि प्रमुख हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

- मृदा परीक्षण के आधार पर ही उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। सामान्यतः दीर्घकालिक प्रजातियों के लिए 120-150 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन तथा मध्यम एवं जल्दी पकने वाली प्रजातियों के लिए क्रमशः 80-100 एवं 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर पर्याप्त होती है। जबकि 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटेशियम/हैक्टर सभी प्रजातियो के लिए आवश्यक होती है। स्वीटकॉर्न के लिए नाइट्रोजन 120 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 60 कि.ग्रा., पोटेशियम 40 कि.ग्रा. एवं जिंक सल्फेट 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है।
- बेबीकॉर्न में, बेसल ड्रेसिंग के रूप में 75:60:20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से एनपीके एवं बुआई के तीन सप्ताह बाद शीर्ष ड्रेसिंग के रूप में 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 20 कि.ग्रा. पोटाश देना चाहिए। यदि मक्का की बुआई बलुई मृदा में की जाती है या खेत में जिंक की कमी हो तो 25 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से जिंक सल्फेट को खेत में बुआई से पूर्व डालना चाहिए। इसमें से नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस, पोटेशियम एवं जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा बुआई के समय 10-15 सें.मी. की गहराई पर पंक्तियों में दें।

संकर मक्का पूसा एचएम-9

खरपतवार नियंत्रण

- मक्का में पहली निराई अंकुरण के 15 दिनों बाद तथा दूसरी निराई 35-40 दिनों बाद करनी चाहिए। एट्राजीन 2 कि.ग्रा./हैक्टर माध्यम से भारी मृदा में तथा 1.25 कि.ग्रा./हैक्टर हल्की मृदा में बुआई के अगले 2 दिनों में 500 लीटर/हैक्टर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। इस शाकनाशी के प्रयोग से एकवर्षीय घासकुल एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार बहुत ही प्रभावी रूप से नियमित हो जाते हैं। मजबूत खरपतवारों जैसे कि वन पट्टा, रसभरी को नियंत्रित करने हेतु बुआई के दो दिनों के अन्दर एट्राटॉफ 600 ग्राम/एकड़, स्टाम्प 30 ई.सी. या ट्रेफ्लान 48 ई.सी. (ट्रेफ्लुरेलिन) प्रत्येक 1 लीटर/एकड़ अच्छी तरह से मिलाकर 200 लीटर पानी के साथ प्रयोग करने पर अच्छे परिणाम आते हैं।

बाजरा

बुआई

- बाजरे की बुआई जुलाई के द्वितीय पखवाड़े में करें। एक हैक्टर क्षेत्र के लिए 4-5 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है। बाजरे की फसल भारी वर्षा वाले उन क्षेत्रों में अच्छी तरह से ली जा सकती है, जहां पर पानी का भराव न हो। इसके लिए बलुई दोमट मृदा अत्यंत उपयुक्त होती है। किसी कारण से बाजरे की बुआई समय पर नहीं की जा सकी हो, तो फसल देरी से बोने की अपेक्षा उसे रोपना अधिक लाभप्रद होता है। एक हैक्टर क्षेत्र में पौधे रोपने के लिए लगभग 500-600 वर्ग मीटर में 2-2.5 कि.ग्रा. बीज की जुलाई में बुआई कर देनी चाहिए और लगभग 2-3 सप्ताह की पौध रोपनी चाहिए। जब पौधों को क्यारियों से उखाड़ें, तो क्यारियों में नमी बनाए रखना आवश्यक है, ताकि जड़ों को क्षति न पहुंचे। पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 45-50×10-15 सें.मी. रखते हुए एक छेद में केवल एक ही पौधे की रोपाई करें।

बाजरे की उन्नत संकर प्रजातियां

- पूसा-23, पूसा-415, पूसा-605, पूसा-322, पूसा-1201, एचएचबी-50, एचएचबी-67, एचएचडी-68, एवं बाजरे की संकुल किस्में पूसा कम्पोजिट-383, पूसा-443, पूसा कम्पोजिट-643,

बाजरे की संकर प्रजाति

पूसा कम्पोजिट-612, राज बाजरा चारी-2, राज-171, आईसीएमवी-155, डब्ल्यूसीसी-75, एचसी-4, एचसी-10, आईसीटीपी-8203 प्रमुख हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

- बाजरे की संकर प्रजातियों के लिए 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश तथा देसी प्रजातियों के लिए 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 25 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर बुआई के समय प्रयोग करें। सभी परिस्थितियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा लगभग 3-4 सें.मी. की गहराई पर डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की बची हुई मात्रा अंकुरण से 4-5 सप्ताह बाद खेत में छिड़ककर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए।

अरहर, मूंग एवं उड़द

बुआई का समय

- अरहर की खेती अगेती एवं पछेती फसल के रूप में करते हैं। सिंचित क्षेत्रों में अगेती अरहर की बुआई मध्य जून में पलेवा करके अवश्य करें। मूंग की फसल को मध्य जुलाई से अगस्त के दूसरे सप्ताह तक बोना चाहिए। उड़द की बुआई का उचित समय जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक अच्छा माना जाता है। देर से बुआई करने पर उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मृदा का चयन

- हालांकि, अरहर, मूंग एवं उड़द को अधिकांश मृदा में उगाया जा सकता है। फिर भी मृदा का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि खेत ऊंचा एवं समतल हो तथा उसमें जल निकास अच्छा हो। उत्तर भारत में अरहर, मूंग एवं उड़द को मटियार दोमट मृदा से लेकर रेतीली दोमट मृदा में उगाया जाता है। इन फसलों के लिए बलुई-दोमट अथवा दोमट मृदा, जिसका पी-एच मान 6.5-7.5 के बीच हो और भूमि जल की गहराई पर हो, सर्वोत्तम रहती है। यदि मृदा में दीमक की समस्या हो, तो इसके प्रकोप से बचने के लिए 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर कार्बेरिल (59 प्रतिशत) को मिट्टी में उस समय मिलाना चाहिए, जब खेत की तैयारी अंतिम चरण में हो। इसके अलावा 10 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से एल्डीकार्ब या फोरेट का प्रयोग भी लाभदायक रहता है।

अरहर

अरहर की उन्नत प्रजातियां

- उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के लिए अरहर की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा अरहर 151, सीजी अरहर 2 आदि प्रमुख हैं।

मूंग की उन्नत प्रजातियां

ज्वार

बुआई

- ज्वार की बुआई इस माह के प्रथम पखवाड़े तक पूरी करें। बुआई से पूर्व बीज को कार्बेण्डाजिम या एग्रोसन जीएन अथवा कैप्टॉन आदि से 2-5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त बीज को जैव उर्वरक एजोस्पीरीलम एवं पीएसबी से भी उपचारित करने से 15-20 प्रतिशत अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। ज्वार की बुआई के लिए 12-15 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है। इसके लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी एवं पौधे से पौधे की दूरी 45×15 सें.मी. रखी जानी आवश्यक है।

किस्मों का चयन

- ज्वार की उन्नत संकर प्रजातियां जैसे-सीएसएच-1, सीएसएच-9, सीएसएच-11, सीएसएच-13 आदि प्रमुख हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

- ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए सिंचित क्षेत्रों में 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 40-50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता पड़ती है जबकि असिंचित क्षेत्रों में 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 30-40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में जिंक तथा आयरन ज्वार के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इन तत्वों की कमी पूरा करने के लिए जिंक का 0.2 प्रतिशत तथा आयरन का 0.15 प्रतिशत घोल का पर्णीय छिड़काव बुआई के 35-40 दिनों बाद अवश्य कर देना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

- ज्वार की खेती में निराई-गुड़ाई का अधिक महत्व है एवं साथ ही खरपतवारनाशी एट्राजीन (50 प्रति डब्ल्यू.सी.) 0.75-1.0 कि.ग्रा./हैक्टर या एलाक्लोर (50 ई.सी) 1.5-2.0 लीटर/हैक्टर या एट्राजीन+पेण्डीमेथिलीन 0.75-1.0 कि.ग्रा./हैक्टर या एट्राजीन+एलाक्लोर 0.75-1.0 कि.ग्रा./हैक्टर घुलनशील चूर्ण का 600-800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के तुरन्त बाद अंकुरण के पूर्व प्रयोग करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं।

मूंग

- पूसा 1371, पूसा 0672, पूसा विशाल, पूसा 9531, पूसा रत्ना, पूसा 672, सम्राट (पीडीएम 139), पी.डी.एम. 54 आदि।

उड़द की उन्नत प्रजातियां

- शेखर 1, के.यू.जी.-479, नरेन्द्र उड़द-1, एनडीयू 99-2, आजाद उड़द 1, आजाद उड़द 2, आजाद उड़द 3, शेखर उड़द 1, शेखर उड़द 2, शेखर उड़द 3 आदि।

बीजोपचार एवं राइजोबियम जीवाणु द्वारा बीज शोधन

- मृदा एवं बीजजनित कई कवक एवं जीवाणुजनित रोग होते हैं, जो अंकुरण के समय तथा बाद में बीजों को काफी क्षति पहुंचाते हैं। बीजों के अच्छे अंकुरण तथा स्वस्थ पौधों की पर्याप्त संख्या हेतु बीजों को कवकनाशी से उपचार करने की सलाह दी जाती है। इसके लिये प्रति कि.ग्रा. बीज को 2-2.5 ग्राम थीरम तथा 1 ग्राम कार्बेण्डाजिम से उपचार करने के बाद राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार करना चाहिए। उपचार हेतु 500 मि.ली. स्वच्छ जल में 100 ग्राम गुड़ एवं 2 ग्राम गोंद को पानी में मिलाकर गर्म कर लेना चाहिए। इसके बाद इसे ठंडा करके एक पैकेट राइजोबियम कल्चर/टीका (10 कि.ग्रा. बीज) मिलाकर अच्छी तरह बीजों को उपचारित कर लेना चाहिए एवं उपचारित बीजों को छाया में सुखाना चाहिए। बुआई के समय बीज डालने से पहले सल्फर का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया से बीज का शोधन करना भी लाभदायक होता है।

उड़द

खरपतवार प्रबंधन

- बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद निराई कर देनी चाहिए। चौड़ी पत्ती तथा घास वाले खरपतवार को रासायनिक विधि से नष्ट करने के लिये पेण्डीमेथिलीन (30 ई.सी.) 3.30 लीटर या एलाक्लोर की 4 लीटर या फ्लूक्लोरोलिन (45 ई.सी.) 2.20 लीटर या मेटोलाक्लोर (50 ई.सी.) 2.0 लीटर को 600-800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरन्त बाद या अंकुरण से पहले छिड़काव कर देना चाहिए। अरहर की फसल में बुआई के 25 दिनों बाद निराई-गुड़ाई करके खरपतवार नियंत्रण तथा सघन पौधों को निकाल देना चाहिए।

मूंगफली

जलवायु एवं मृदा

- मूंगफली की खेती उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले प्रदेशों में की जाती है। पौधे के अच्छे विकास के लिए सूर्य के प्रकाश और गर्मी की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिए 60 से 130 सें.मी. वर्षा काफी होती है। इसकी खेती के लिए उचित जल निकासी वाली हल्की पीली दोमट मृदा सबसे उपयुक्त होती है। साथ ही भूमि का पी-एच मान 6 से 7 के बीच होना चाहिए।

उन्नत प्रजातियां

- जीजी 3, जीजी 6, जीजी 12, जीजी 11, जीजी 20, जे 11, जीएयूजी 1, जेएल 24, टीएजी 24, टीएजी 26, और आरजी-141 आदि।

बुआई

- खरीफ मौसम की फसल की बुआई का उचित समय जून का दूसरा पखवाड़ा है। हालांकि असिंचित क्षेत्रों में जहां बुआई मानसून के बाद की जाती है, जुलाई के पहले पखवाड़े में बुआई के काम को पूरा कर लें, ताकि निक्रोसिस रोग से बचा जा सके। मूंगफली की मध्यम और अधिक फैलने वाली किस्मों में क्रमशः 80-100 और 60-80 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर है, जबकि गुच्छेदार किस्मों में बीज की उचित मात्रा 100-125 कि.ग्रा./हैक्टर पर्याप्त होती है। गुच्छेदार किस्मों को 30×10 सें.मी. एवं फैलने वाली किस्मों को 45-60×10-15 सें.मी. की दूरी एवं 4-6 सें.मी. की गहराई पर बोएं। यदि संभव हो तो मूंगफली की बुआई मेड़ों पर करें। बुआई से पूर्व बीज को 2-3 ग्राम थीरम या कार्बेण्डाजिम/कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करें। इस उपचार के 5-6 घंटे बाद, बीज को उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। उपचार के बाद बीज को छाया में सुखायें एवं शीघ्र ही बुआई के लिए उपयोग करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

- मृदा परीक्षण के अभाव में रासायनिक

सारणी 2. बीजदर, दूरी एवं पोषक तत्व प्रबंधन

फसल	बीज की मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टर)	पंक्ति से पंक्ति की दूरी (सें.मी.)	पौधे से पौधे की दूरी (सें.मी.)	नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश (कि.ग्रा./हैक्टर)	सल्फर एवं जस्ता (कि.ग्रा./हैक्टर)
अगेती अरहर	15-20	45	10-15	15.20: 40.50: 20	20: 15
पछेती अरहर	10-15	60-75	20-25	15.20: 40.50: 20	20: 15
उड़द	15-18	30-35	10	15: 45: 0	20: 0
मूंग	15-18	30-35	7-10	15: 50: 50	20: 20

इनके अतिरिक्त नवीनतम प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का पर्णीय छिड़काव यदि फली बनने की अवस्था में किया जाये, तो उपज में निश्चित रूप से वृद्धि होती है।

मूंगफली

उर्वरकों के उपयोग के साथ-साथ 5 से 10 टन/हैक्टर गोबर की खाद का उपयोग करें। नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया के शुरू होने से पहले की मांग की पूर्ति के लिए सिंचित क्षेत्रों में 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 30-40 कि.ग्रा. पोटाश तथा बारानी क्षेत्रों में 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 20-25 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। इनके अतिरिक्त गंधक और कैल्शियम का मूंगफली की उपज और गुणवत्ता पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है, जिसके लिए 200-400 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा और जिप्सम की आधी मात्रा बुआई के समय मृदा में अच्छी तरह मिला दें। जिप्सम की शेष आधी मात्रा को फूल निकलने के समय 5 सें.मी. की गहराई पर पौधे के पास दिया जाना चाहिए। जस्ते की कमी की पूर्ति हेतु 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट एवं बोरॉन की कमी की पूर्ति हेतु 2 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हैक्टर का प्रयोग करें।

खरपतवार प्रबंधन

- खरपतवार का सही नियंत्रण न करने पर फसल उत्पादन में 30-50 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। इसके लिए कम से कम दो बार निराई-गुड़ाई, 20-25 दिनों और 40-45 दिनों पर की जानी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु एलाक्लोर (50 प्रतिशत ई.सी.) 1.5-2.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर या पेण्डीमेथिलीन (30 प्रतिशत ई.सी.) 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर खरपतवारनाशी का बुआई के बाद दूसरे दिन 700-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। फसल की बुआई के पूर्व फ्लूक्लोरेलिन 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से छिड़काव करके मिट्टी में मिलाने से भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है।

सोयाबीन

भूमि का चयन एवं तैयारी

- सोयाबीन की खेती के लिए उचित जल निकास वाली दोमट मृदा सबसे अच्छी रहती है। खेत की तैयारी के समय दो बार हैरो या मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करने के उपरान्त देसी हल से जुताई कर पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। पलेवा के 6-7 दिनों बाद खेत की पुनः देसी हल से जुताई कर देनी चाहिए। इसके बाद ही बीज बुआई करनी चाहिए।

उन्नत प्रजातियां

- उत्तरी मैदानी क्षेत्रों के लिए पूसा सोयाबीन 14, पूसा सोयाबीन 12, पूसा 9712,पूसा 9814, पूसा 16, पीके 416, मध्य भारत क्षेत्र के लिए एनआरसी 7, एआरसी 37, जेएस. 335, जेएस. 93-05, जेएस. 95-60, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के लिए बिरसा सोयाबीन 1, इंदिरा सोया 9, प्रताप सोया 9, एमएयूएस 71, जेएस. 80-21, उत्तर पहाड़ी क्षेत्र के लिए शिलाजीत, पूसा 16, वी एल सोया 2, वी एल सोया 47, हरा सोया आदि प्रमुख हैं।

सोयाबीन

बुआई

- सोयाबीन की खेती मुख्य रूप से खरीफ में होती है। इसकी बुआई उत्तरी मैदानी

सूरजमुखी

जलवायु एवं मृदा

- सूरजमुखी की 26 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान में अच्छी फसल ली जा सकती है। इसकी खेती अच्छे जल निकास वाली सभी तरह की मृदा में की जा सकती है। दोमट एवं बलुई दोमट मृदा जिसका पी-एच मान 6.5-8.5 हो, इसके लिए बेहतर होती है।

सूरजमुखी की संकर प्रजातियां

- केवीएसएसएच-1, एसएच-3322, एमएसएफएच-1785-90, केवीएसएसएच-44, डीआरएसएच-1, पीएसएफएच-118, पीएसएफएच-569, एचएसएफएच--848, मारूती, केवीएसएसएच-41 तथा **उन्नत संकुल प्रजातियां:** सूर्या, मार्डन, डीआरएस्फ-108, को-5, टीएएसएफ-82, एलएसएफ-8, फुले रविराज आदि प्रमुख हैं।

बुआई

- सूरजमुखी की बुआई इस माह के प्रथम पखवाड़े में कर लें। बुआई से पूर्व बीजों को थीरम या कैप्टॉन की 3.0 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करें। इससे मृदाजनित रोगों से बीज सड़ता नहीं हैं और जमाव अच्छा होता है। संकर प्रजातियों का 7-8 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर 60×20 सें.मी. की दूरी पर तथा संकुल प्रजातियों का 12-15 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर 45×20 सें.मी. की दूरी पर करनी चाहिए। बुआई सीडड्रिल या पंक्तियों में करें। जब पौधे लगभग 10 दिनों के हो जाएं और कहीं पर एक से अधिक पौधे दिखाई पड़ें, तो ओज वाले पौधे को छोड़कर बाकी को उखाड़ दें।

पोषक तत्व प्रबंधन

- सामान्यतः सूरजमुखी की फसल में उर्वरक का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। मृदा परीक्षण न होने की दशा में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग करना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

- रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेण्डीमेथिलीन (30 ई.सी.) 3.3 लीटर या प्री-इमरजेंस फ्लूक्लोरीन का 2 लीटर/हैक्टर की दर से 600 लीटर पानी में घोलकर बुआई के 1-2 दिनों बाद छिड़क देना चाहिए। यदि आवश्यकता पड़े 30-35 दिनों बाद एक गुड़ाई करें। इस समय पौधों के दोनों तरफ मिट्टी भी चढ़ा देनी चाहिए।

एवं मध्य क्षेत्रों में मध्य जून से मध्य जुलाई तक, दक्षिणी क्षेत्रों में मध्य जून से जुलाई अंत तक, उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में मध्य जून से मध्य जुलाई तक पूरी कर लें। यदि बीज की अंकुरण क्षमता कम है, तो बीज की मात्रा उसी दर से बढ़ा देनी चाहिए। मोटा दाना 80-85 कि.ग्रा., मध्यम दाना 70-75 कि.ग्रा. एवं छोटा दाना 60-65 कि.ग्रा./हैक्टर पर्याप्त होता है। सोयाबीन की बुआई पंक्तियों में 45×50 सें.मी. की दूरी में करनी चाहिए। बुआई से पहले बीज को

गन्ना

अंत:सस्यन क्रियाएं

- फसल में शेष बची एक बोरी यूरिया जुलाई में मानसून वर्षा आने पर डालें। गन्ने की देर से बोई गयी फसल में निराई-गुड़ाई करने के बाद इस माह मिट्टी चढ़ाने का कार्य पूरा कर लें। जल निकास का उचित प्रबंधन करें। पर्याप्त वर्षा न होने पर 15-20 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करते रहें। शरद कालीन गन्ने को गिरने से बचाने के लिए बंधाई अवश्य करें।

पौध संरक्षण

- चोटीबेधक की मादा तितली जुलाई माह में पत्तियों की निचली सतह पर समूह में अण्डे देती है। अण्डे वाली पत्तियों को नष्ट कर दें तथा कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 25 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से अवश्य प्रयोग करें। चोटीबेधक के नियंत्रण हेतु 4 ट्राइकोकार्ड/हैक्टर की दर से प्रयोग करें। गुरदासपुर बेधक के नियंत्रण हेतु सूखे अगोले को काटकर जमीन में दबा दें तथा क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी./लीटर/हैक्टर की दर से छिड़काव करें एवं सफेद गिडार के नियंत्रण हेतु लाइट ट्रैप या कीटनाशी छिड़काव कर नियंत्रण करें।

तिल

भूमि का चयन एवं तैयारी

- तिल की खेती मटियार एवं चिकनी दोमट मृदा में सफलतापूर्वक की जा सकती है। रबी/जायद की फसलें काटने के बाद दो जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए, इसके बाद कल्टीवेटर या देसी हल से दो बार जुताई करके खेत अच्छी तरह समतल कर लेना चाहिए।

उन्नत किस्में

- गुजरात तिल नं-1, गुजरात तिल नं-2, फुले तिल नं-1, प्रताप, ताप्ती, पदमा, एन.-8, डी.एम. 1 आदि।

बुआई

- खरीफ फसल के लिए जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक तिल की बुआई को उपयुक्त पाया गया है। समय से बुआई के लिए 3-4 कि.ग्रा. एवं देर से बुआई के लिये 4-5 कि.ग्रा./हैक्टर बीज की मात्रा उचित रहती है। बीजजनित रोगों से बचाव हेतु 2.5 ग्राम थीरम या कैप्टॉन प्रति कि.ग्रा. की दर से बीज शोधन हेतु प्रयोग करें। पंक्तियों के बीच का फासला 30-45 सें.मी. का रखें एवं बीज को 1.5-2.5 सें.मी. की गहराई पर डालें। बुआई के 15 से 20 दिनों बाद पौधों की छंटाई करते समय पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सें.मी. रखें।

पोषक तत्व प्रबंधन

- उर्वरकों की मात्रा मृदा की जांच और पानी की उपलब्धता पर निर्भर करती है। मृदा की जांच संभव न होने की अवस्था में सिंचित क्षेत्रों में 40-50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर तथा वर्षा आधारित फसल में 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 15 से 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर फॉस्फोरस की मात्रा का प्रयोग करें। मुख्य तत्वों के अतिरिक्त 10 से 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर गंधक का उपयोग करने से तिल की उपज में वृद्धि की जा सकती है। सिंचित क्षेत्रों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा और अन्य उर्वरकों की पूरी मात्रा, जबकि असिंचित क्षेत्रों में सभी उर्वरकों की पूरी मात्रा बुआई के समय बीज से 3-4 सें.मी. गहराई पर प्रयोग करें, शेष नाइट्रोजन की आधी मात्रा को बुआई के 30-35 दिनों बाद खड़ी फसल में प्रयोग करें।

खरपतवार नियंत्रण

- खेत को बुआई के 25-30 दिनों तक खरपतवारों से मुक्त रखना अनिवार्य है। पहली निराई-गुड़ाई फसल बोने के 15 से 20 दिनों के अन्दर करनी चाहिए। यदि खरपतवार अधिक हो, तो बुआई के 35 से 40 दिनों के अंदर दूसरी निराई-गुड़ाई करें। तिल में एक कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से फ्लूक्लोरेलिन सक्रिय दवा को 400-500 लीटर पानी में घोलकर गुड़ाई से पहले खेत में छिड़कने से भी खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। फसल बोने से पहले दवाई को सतही मिट्टी में मिला दें। इसके अतिरिक्त एलाक्लोर (1-75 कि.ग्रा.) या पेण्डीमेथिलीन (1 कि.ग्रा.) के प्रयोग बुआई के 2-3 दिनों के अंदर करें।

2 ग्राम थीरम + 1 ग्राम कार्बेण्डाजिम/कि.ग्रा. बीज की दर से भली प्रकार से उपचारित कर लेना चाहिए। इसके बाद राइजोबियम एवं पीएसबी जीवाणु टीके से बीज को 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

- सोयाबीन से अच्छा उत्पादन लेने के लिए लगभग 5-10 टन/हैक्टर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुआई से लगभग 20-25 दिनों पहले खेत में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। यदि मृदा परीक्षण नहीं करवाया गया है, तो उन्नत प्रजातियों के लिए

कपास

- कपास एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, जो व्यावसायिक क्षेत्र में श्वेत स्वर्ण के नाम से जानी जाती है। इसकी खेती रेतीली लवणीय तथा सेम वाली मृदा को छोड़कर सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है।

बुआई

- उत्तर भारत के अधिकांश क्षेत्रों में कपास की बुआई मानसून के आने पर ही की जाती है। हालांकि यदि सिंचाई की अच्छी व्यवस्था हो, तो मई में भी इसकी बुआई की जा सकती है। बुआई के लिए सीड-कम-फर्टी ड्रिल अथवा प्लांटर का प्रयोग कर सकते हैं। अमेरिकन, संकर और देसी कपास की क्रमशः 15-20, 4-5 और 10-12 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। देसी अथवा अमेरिकन कपास के लिए 60×30 सें.मी. तथा संकर किस्मों के लिए 90×40 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी रखनी चाहिए। बोने से पूर्व बीजों को प्रति कि.ग्रा. 2.5 ग्राम कार्बेण्डाजिम या कैप्टॉन दवा से उपचारित कर फसल को राइजोक्टोनिया जड़ गलन, फ्यूजेरियम उकठा और अन्य मृदाजनित फफूंद से होने वाली व्याधियों को बचाया जा सकता है। इमिडाक्लोरोप्रिड 7.0 ग्राम अथवा कार्बोसल्फॉन 20 ग्राम/कि.ग्रा. ग्राम बीज उपचार से 40-60 दिनों तक रस चूसक कीटों से सुरक्षा मिलती है। दीमक से बचाव के लिए 10 मि.ली. पानी में 10 मि.ली. क्लोरोपाइरीफॉस मिलाकर बीज पर छिड़क दें तथा 30-40 मिनट छाया में सुखाकर बुआई कर दें।

किस्मों का चयन

- कपास की संकर प्रजातियां जैसे-लक्ष्मी, एच.एस. 45, एच.एस.6, एल.एच. 144, एच.एल. 1556, एफ. 1861 एवं देसी प्रजातियां जैसे-एच. 777, एच.डी. 1, एच. 974 एवं एल.डी. 327 आदि प्रमुख हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

- उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर किया जाना चाहिए। कपास की अमेरिकन एवं देसी किस्मों के लिये 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 20-30 कि.ग्रा. पोटाश और संकर किस्मों के लिये 150-60-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। 25 कि.ग्रा. जिंक प्रति हैक्टर का प्रयोग लाभदायक है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं बाकी उर्वरकों की पूरी मात्रा बुआई के समय डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की बाकी मात्रा फूल आने के समय सिंचाई के बाद में देनी चाहिए।

20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60-80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40-50 कि.ग्रा. पोटाश और 20-25 कि.ग्रा. गंधक/हैक्टर पोषक तत्वों की मात्रा देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

- बुआई के 30 और 45 दिनों बाद निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई के बाद और अंकुरण से पहले फ्लूक्लोरोलिन या ट्राइफ्लोरालिन 1 कि.ग्रा. या एलाक्लोर (50 ई.सी.) की 4 लीटर या पेण्डीमेथिलीन 1 कि.ग्रा. या क्लोमोजोन 1 कि.ग्रा. मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

सब्जी फसलें

फूलगोभी

- अगेती फूलगोभी की प्रजाति पूसा शरद, पूसा हाइब्रिड-2, पूसा दीपाली, काशी क्वारी, अर्ली क्वारी, पूसा कार्तिकी, पूसा अर्ली सिंथेटिक की रोपाई का उपयुक्त समय है। रोपाई 45×30 सें.मी. की दूरी पर करें एवं 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर का प्रयोग करें। रोपित खेतों में जल निकास की उचित व्यवस्था करें।

अगेती फूलगोभी

हरी मिर्च

- अगेती हरी मिर्च की प्रजाति पूसा सदाबहार, काशी अनमोल, काशी गौर एवं पूसा ज्वाला, पंत सी-1, पंजाब लाल एवं संकर किस्में काशी सुर्ख, काशी अगेती, काशी तेज, अर्का मेघना, अर्का हरिता की रोपाई का उपयुक्त समय है। हरी मिर्च में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर कि दर से प्रयोग करें एवं रोपाई 45×30 सें.मी. की दूरी पर करें।

भिंडी

भिंडी की उन्नत किस्में जैसे-पूसा ए-5, पूसा ए-4, पूसा सावनी, परभणी क्रान्ति, काशी प्रगति, काशी विभूति, काशी सातधारी, काशी क्रान्ति एवं संकर किस्में जैसे-काशी भैरव, सारिका, सिंजेंटा-152, महिको-8888, यू.एस.-7109, एस.-5, जे.के. हरिता आदि प्रमुख हैं। बुआई हेतु बीज दर 8-10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर, बुआई की दूरी 60×30 सें.मी., समय जून-जुलाई (खरीफ) एवं उर्वरक 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर उपयुक्त माना जाता है। यदि गोबर की खाद उपलब्ध है, तो 150 क्विंटल/हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

बैंगन

- यह एक गर्म और वर्षा ऋतु की फसल है, जो पाले को सहन नहीं कर सकती। इसकी खेती के लिए 6 से 7 पी-एच मान वाली बलुई दोमट, अच्छी जल

बैंगन

निकासी वाली मृदा उपयुक्त है। अगेती बैंगन की उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा पर्पल क्लस्टर, पूसा बिंदु, पूसा कौशल, पूसा श्यामला, पूसा अंकुर एवं गोल बैंगन की उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा उत्तम, काशी संदेश, पंत ऋतुराज, रामनगर जॉयन्ट आदि प्रमुख हैं। अच्छी जमाव क्षमता वाला 400 ग्राम तथा 250-300 ग्राम संकर किस्मों का बीज/हैक्टर की दर से पर्याप्त होता है।

- बैंगन की नर्सरी जुलाई में लगाने से अक्टूबर में सब्जी मिलने लगेगी। रोपाई 75×60 सें.मी. की दूरी पर की जाती है। खेत की तैयारी के समय 25 टन/हैक्टर, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश तथा 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की आधी मात्रा मिट्टी में मिला दें तथा बाकी आधी नाइट्रोजन की मात्रा को फूल आने के समय प्रयोग करें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेण्डीमेथिलीन नामक खरपतवारनाशी की 3 लीटर मात्रा का प्रति हैक्टर की दर से पौध रोपाई से पहले प्रयोग करें एवं आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई करते रहें।

कद्दूवर्गीय सब्जियां

- जून के अन्त से जुलाई का समय कद्दूवर्गीय सब्जियों की बुआई के लिए सर्वोत्तम होता है। खेत में लगभग 45 सें.मी. चौड़ी तथा 30-40 सें.मी. गहरी नालियां बना लें। बुआई से पहले नालियों में पानी भर दें, जब नाली में नमी की मात्रा बीज बुआई के लिए उपयुक्त हो जाए, तो बुआई के स्थान पर मिट्टी भुरभुरी करके बीज बोएं।
- **लौकी:** लौकी की उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा नवीन, पूसा संदेश, पूसा सतुंष्टि, पूसा समृद्धि, पूसा हाइब्रिड-3, काशी गंगा तथा अर्का बहार प्रमुख हैं। लौकी का बीज दर 4-5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। लौकी में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 3 मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 0.5 मीटर पर बुआई करें।
- **चप्पन कद्दू:** इसकी उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा पसंद, पूसा अलंकार, ऑस्ट्रेलियन ग्रीन एवं पैटी पैन प्रमुख हैं। इसकी बीज दर 5-6 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है।
- **कद्दू:** इसकी उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा विश्वास, पूसा विकास, पूसा हाइब्रिड-1, अर्का चन्दन, काशी हरित प्रमुख हैं। कद्दू का बीज दर 3-4 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।
- **तोरई:** चिकनी तोरई की उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा चिकनी, पूसा स्नेहा, काशी दिव्या, पूसा सुप्रिया एवं धारीदार तोरई की उन्नत प्रजाति जैसे-पूसा नूतन, अर्का सुजात, सतपुतिया, अर्का सुमीत एवं पूसा नसदार प्रमुख हैं। तोरई की बीज दर 5.0-5.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है। इनकी बुआई 2.5 मीटर×45-50 सें.मी. दूरी पर करें।
- **करेला:** करेला की पूसा दो मौसमी एवं पूसा विशेष किस्में जुलाई के पहले

लौकी

सप्ताह तक लगा सकते हैं। इसके 3 कि.ग्रा. बीज को 12-20 घंटे तक भिगोयें तथा 1.7 फीट चौड़ी नाली के दोनों तरफ बुआई करें। नालियों की आपसी दूरी 6 फीट रखें। 10 टन देसी खाद, 1/2 बोरा यूरिया, 1.5 बोरा सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 1/2 बोरा म्यूरेट ऑफ पोटाश आखिरी जुताई के समय मृदा में मिला दें। बीजाई के समय कीटों की रोकथाम के लिए फ्यूराडॉन मिट्टी में मिला दें। इसकी 60-70 दिनों में 600-700 कि.ग्रा. पैदावार मिल जाती है।

- **टिंडा:** इसकी उन्नत प्रजाति पूसा रौनक, पजांब टिंडा, अर्का टिंडा प्रमुख हैं। टिंडे के लिए बीज दर 6-7 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है।
- **खीरा:** खीरे की उन्नत प्रजाति जैसे-जापानी लांग ग्रीन, स्ट्रेटे, पूसा उदय, पूसा बरखा, पोइनसेट तथा पूसा संयोग प्रमुख हैं। खीरे की बुआई हेतु बीज दर 2.0-2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 1.5 मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 30-45 सें.मी. रखें।
- **कुंदरू:** इसकी रोपाई के लिए यह उपयुक्त समय है। कुंदरू में नर एवं मादा पौधे अलग-अलग होते हैं। अच्छी उपज लेने के लिए 10 मादा पौधों पर एक नर पौधा अवश्य लगायें। ग्रीष्म ऋतु में 3 मीटर की दूरी पर 30×30×30 सें.मी. आकार की खोदे गये गड्ढों में 3 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद या नाडेप खाद, 50 ग्राम यूरिया, 200 ग्राम सुपर फॉस्फेट, 100 ग्राम पोटाश प्रति गड्ढे की दर से अच्छी तरह मिट्टी एवं बालू में मिलाकर 10 सें.मी. की ऊंचाई तक जुलाई के प्रथम सप्ताह तक भर दें तथा वर्षा प्रारंभ होते ही कलिकायुक्त विकसित कलमों को इन गड्ढों में रोप दें।
- **पेठा:** पेठा की उन्नत प्रजाति पूसा श्रेयाली, पूसा उर्मी, पूसा उज्जवल, काशी धवल, काशी उज्जवल, काशी सुरभि प्रमुख हैं। पेठा का बीज दर 5-6 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।
- कद्दूवर्गीय सब्जियों में बुआई के लगभग 25-30 दिनों बाद पौधों के बढ़वार के समय प्रति हैक्टर 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग करें। जून में बोयी गयी कद्दूवर्गीय सब्जियों में मचान बनाकर सहारा दें तथा उचित जल निकास की व्यवस्था करें। कद्दूवर्गीय सब्जियों में बुआई के लगभग 25-30 दिनों बाद 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें।
- **खरीफ प्याज:** खरीफ की प्याज के लिए पौधशाला में बीज की बुआई 10 जुलाई तक कर दें। एक हैक्टर की रोपाई के लिए 12-15 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है।
- **हल्दी:** हल्दी में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर बुआई के 35-40 दिनों बाद पंक्तियों के बीच में प्रयोग करें।

- **अदरक:** अदरक में बुआई के 40 दिनों बाद प्रति हैक्टर 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन मिट्टी चढ़ाते समय दें।
- **जिमीकन्द/सूरन:** इनकी फसल में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 65-70 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग करें।
- **चौलाई:** बरसात वाली चौलाई की बुआई पूरे महीने की जा सकती है। इसके लिए 1.5-2.0 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

बागवानी फसलें

- **अमरूद:** अमरूद के नये बाग लगाने का यह उपयुक्त समय है। इसकी प्रजाति जैसे-इलाहाबाद सफेदा, सरदार, अर्का मृदुला, अर्का अमूल्या, अर्का किरण, संकर अर्का अमूल्य आदि प्रमुख हैं।
- **आंवला:** आंवला के नये बाग इस माह में लगायें। इसकी प्रजाति जैसे-नरेन्द्र आंवला-4, नरेन्द्र आंवला-6, नरेन्द्र आंवला-7, नरेन्द्र आंवला-10, फ्रांसिस, कृष्णा, चकैया, कंचन (एनए-4) आदि प्रमुख हैं। आंवले के बागों में एफिड की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत का घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव करें।
- **केला:** इसके नये सकर्स खेतों में रोपें, जिसके लिए इसकी उन्नत प्रजाति जैसे-बसराई ड्वार्फ, हरी छाल, रोबस्टा, कोठिया, मालभोग आदि प्रमुख हैं। केले की खेती में अवांछित पत्तियों को निकाल देना चाहिए। पेड़ों पर मिट्टी चढ़ाकर जल निकास का प्रबंधन करना चाहिए। फल आने वाले पौधों में सहारा देने के लिए थूनियां लगानी चाहिए। नए बाग लगाने के लिए अच्छी एवं स्वस्थ पत्तियां, जो तलवार के आकार की हों, उत्तम किस्मों से लेकर लगानी चाहिए।
- **बेर:** बेर की प्रजाति जे.जी.-2, विलायती, उमरान, कैथली, सनोर-2 आदि का प्रयोग कर नये बाग इस माह में तैयार करें। बेर में मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 ई.सी. 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- **लीची:** लीची में गूटी बांधने का कार्य करें एवं रोपाई का कार्य में माह के अंत तक करें। इसकी प्रमुख प्रजातियां बेदाना, मुजफ्फरपुर, कलकतिया, देहरादून, रोजसेन्टेड शाही, त्रिकोलिया, अझौली, ग्रीन, देसी, डी-रोज, अर्ली बेदाना, स्वर्ण रूपा, चाइना, पूर्वी, कसबा आदि हैं।
- **पपीता:** इसकी प्रजाति जैसे-पूसा नन्हा, पूसा डिलीशियस वाशिंगटन, हनीड्यू, रेड लेडी, पूसा मैजेस्टी, पूसा ड्वार्फ, पूसा जॉयन्ट, अर्का सूर्या आदि प्रमुख हैं।
- **नीबू:** नीबूवर्गीय के पौधों को सिल्ला, लीफ माईनर एवं सफेद मक्खी से बचाव के लिए 770 मि.ली. ऑक्सीडमेटोन-मिथाइल 27 ईसी 700 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। तने एवं फल के गलने का बचाव बरसात की पहली बौछार के तुरंत बाद 0.3 प्रतिशत कापर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें।
- **लोकाट:** बागों में पेड़ी की कटाई-छंटाई का कार्य समाप्त करना चाहिए। बाग में जल निकास के लिए नालियां बना लेनी चाहिए। कटाई-छंटाई के बाद ब्लॉइटॉक्स-50 का छिड़काव करके कटे भागों में बोर्डो मिश्रण का लेप लगा देना चाहिए। नए बाग लगाने के लिए 2-3 प्रजातियों के पौधे एक साथ लगाने चाहिए।
- **कटहल:** कटहल के फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें तथा जल निकास का उचित प्रबंधन करना चाहिए। बाग लगाने के लिए पौधों की रोपाई का कार्य शुरू कर देना चाहिए।

आम

आम की तैयार हो रही प्रजातियों को समय पर बाजार भेजने की व्यवस्था करें एवं जुलाई के आखिरी सप्ताह में आम के नये पौधों को लगाएं। फल तुड़ाई के बाद वृक्षों की कटाई-छंटाई करें। सूखी एवं रोगी टहनियों को काटकर जला दें। आम की प्रजाति जैसे-पूसा प्रतिभा, पूसा अरुणिमा, पूसा श्रेष्ठ, पूसा लालिमा, अर्का अरुणा, अर्का अनमोल, चौसा प्रमुख हैं। आम में शाखा कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) की 125 मि.मी. अथवा डाई-मैथोएट (30 ई.सी.) 150 मि.मी. मात्रा को 100 लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अन्तराल पर वृक्षों पर छिड़काव करें। आम एवं लीची में रेडरस्ट तथा शूट मोल्ड रोग की रोकथाम के लिए ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (100 ग्राम दवा 100 लीटर पानी में घोलकर) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) पेड़ों पर छिड़काव करें।

अंगूर

अंगूर के बागों में मध्यम समय में पकने वाली किस्मों के फल तोड़कर बाजार भेजें। बाग में पानी के निकास का प्रबंध करना चाहिए। फल सड़न रोग की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत (40 मि.ली. प्रति 100 लीटर पानी) तथा ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (300 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव करें।

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

- प्रत्येक ऋतु का बागवानी की दुनिया में अपना अलग महत्व होता है। मानसून का मौसम बागवानी प्रेमियों के लिए पौधे लगाने और दोबारा गमले भरने (री-पॉटिंग) के लिए सबसे उत्तम समय होता है।
- भारत में वर्षा ऋतु में उगाए जाने वाले फूल हैं: बालसम, गेंदा, कॉसमॉस, सूरजमुखी, जीनिया, क्लियोम, सेल्विया।
- जरबेरा के पुराने पौधों को विभाजित करके लगाएं।
- नरगिस के बल्ब का भंडारण करें।
- गुलदाउदी में शीर्ष नोचन का कार्य करें।
- रजनीगंधा, ग्लैडियोलस में आवश्यकतानुसार सिंचाई, निराई-गुड़ाई करें तथा तथा पोषक तत्वों के मिश्रण का 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करें। इसके साथ ही जल निकास की व्यवस्था करें। रजनीगंधा के स्पाइक (पुष्प डन्डियों) को समय-समय पर तोड़ लें।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गौरवशाली संकल्प

भारतीय कृषि को वैज्ञानिक आधार देने एवं इसे आधुनिक बनाने में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भाकृअनुप) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी 16 जुलाई 2025 को भाकृअनुप का 97वां 'स्थापना एवं प्रौद्योगिकी दिवस' मनाया जायेगा, जो हमें इसके गौरवशाली इतिहास, उपलब्धियों और भविष्य की संभावनाओं की याद दिलाता है।

नवाचार से आत्मनिर्भर कृषि की ओर

स्थापना और उद्देश्य

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की स्थापना 16 जुलाई वर्ष 1929 में 'इंपीरियल काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च' के रूप में हुई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इसे 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद' नाम दिया गया। परिषद का मुख्य उद्देश्य कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन और संबद्ध क्षेत्रों में अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार कार्य को बढ़ावा देना है।

भाकृअनुप की प्रमुख उपलब्धियां

- **हरित क्रांति में योगदान:** 1960 और 1970 के दशक में भारत खाद्यान्न की भारी कमी से जूझ रहा था। उस समय भाकृअनुप द्वारा विकसित उच्च उत्पादन क्षमता वाली गेहूं और धान की किस्मों ने हरित क्रांति को संभव बनाया। इससे भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना।
- **कृषि अनुसंधान संस्थानों की स्थापना:** भाकृअनुप के अंतर्गत देश भर में 113 से अधिक संस्थान, 75 कृषि विश्वविद्यालय और 731 कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) संचालित होते हैं। ये संस्थान किसानों को उन्नत तकनीकों से जोड़ते हैं और उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करते हैं।

तकनीकी नवाचार और डिजिटलीकरण

आज के डिजिटल युग में भाकृअनुप ने भी तकनीकी नवाचारों को अपनाया है। 'फार्मर पोर्टल', 'किसान मोबाइल ऐप', 'ई-नाम' और 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' जैसे नवाचार भाकृअनुप के नेतृत्व में कृषि क्षेत्र में लागू हो रहे हैं। इससे न केवल कृषि अधिक वैज्ञानिक बन रही है, बल्कि किसानों की आय भी निरंतर बढ़ रही है।

- **नई किस्मों और तकनीकों का विकास:** भाकृअनुप द्वारा समय-समय पर विभिन्न फसलों की सैकड़ों उन्नत किस्में विकसित की गई हैं। इसके अतिरिक्त, जैविक खेती, संरक्षण कृषि और जलवायु अनुकूल कृषि तकनीकों पर भी कार्य किया जा रहा है।
- **पशुपालन और मत्स्यपालन में योगदान:** भाकृअनुप ने दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन, पशु प्रजनन और मछली पालन के क्षेत्रों में अनुसंधान को बढ़ावा देकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त किया है।
- **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा में भूमिका:** देश की बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए भाकृअनुप ने स्थायी कृषि प्रणाली पर बल दिया है, जिससे उत्पादन तो बढ़े ही एवं पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

कृषि शिक्षा में योगदान

परिषद की देश की कृषि शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका है। देशभर में स्थित कृषि विश्वविद्यालयों में कृषि, बागवानी, वानिकी, डेरी विज्ञान, पशु चिकित्सा, मत्स्यपालन और खाद्य प्रौद्योगिकी जैसे विविध विषयों में स्नातक से लेकर पीएचडी तक की शिक्षा दी जाती है। इसके साथ ही 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' को लागू कर शिक्षा की गुणवत्ता को सुनिश्चित किया गया है।

कृषि विस्तार सेवाएं

भाकृअनुप का एक मुख्य स्तंभ कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) हैं, जो किसानों तक तकनीक पहुंचाने का कार्य करते हैं। ये केंद्र स्थानीय कृषि समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं तथा किसानों को प्रशिक्षण, प्रदर्शन, और कार्यशालाओं के माध्यम से नवीनतम तकनीकों से अवगत करवाते हैं।

जलवायु परिवर्तन और कृषि

जलवायु संकट आज विश्व की सबसे कड़ी चुनौतियों में से एक है। इससे कृषि उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वहीं देशभर में जलवायु के प्रभाव से बचने के लिए 'राष्ट्रीय नवाचार कृषि कार्यक्रम' (निक्रा) जैसे प्रोजेक्ट आरंभ किए गए हैं। ये जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने हेतु अनुसंधान और तकनीकी समाधान प्रदान करते हैं। सूखा, बाढ़, लवणता जैसी समस्याओं के लिए सहनशील किस्मों का विकास इसका उदाहरण है।

भावी परिदृश्य

भविष्य में भारत की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि क्षेत्र को और अधिक वैज्ञानिक, लाभकारी और टिकाऊ बनाने की आवश्यकता है। भाकृअनुप इस दिशा में निरंतर कार्य कर रही है। जैव प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन टेक्नोलॉजी और स्मार्ट खेती जैसे क्षेत्रों में भाकृअनुप की पहलें आने वाले समय में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने कृषि को केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और लाभकारी व्यवसाय के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ■

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्यः ₹30

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। सम्पादकः सुनीता अरोड़ा